महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६२ **अंक** : ०३
दयानन्दाब्दः १९५
विक्रम संवत्: माघ शुक्ल २०७६
कलि संवत्: ५१२०
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

फरवरी प्रथम २०२०

अनुक्रम

०१. परोपकारिणी सभा के दिग्गज...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-४६	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०९
०४. वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम...	स्वामी अखिलानन्द	१४
०५. मेरे पिता ! मेरे आदर्श !	महेन्द्र आर्य	२०
०६. आर्यजगत् के समाचार		२२
०७. सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों...	डॉ. रामप्रकाश वर्णी	२३
०८. मेरे बचपन के साथी पं. सत्यानन्द...	रामदेव आर्य	२५
०९. विश्व पुस्तक मेला-२०२०		२७
१०. गुरुकुल की ओर से	ब्रह्मचारी मोहित	२८
११. संस्था की ओर से...		२९
१२. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

परोपकारिणी सभा के दिग्गज गजानन्द जी नहीं रहे

परोपकारिणी सभा के ऋषि-उद्यान परिसर को भव्य रूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान करने वाले युगल में से डॉ. धर्मवीर जी के जाने के तीन वर्ष बाद दिनांक ०६.०१.२०२० को श्री गजानन्द जी आर्य भी संसार से चले गये। इस समय वे बैंगलौर में अपने छोटे सुपुत्र श्री नरेन्द्र आर्य के पास निवास कर रहे थे, वहीं उन्होंने आखिरी साँस ली और वहीं उनका अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ। यद्यपि वे कई वर्षों से अस्वस्थ चल रहे थे तो भी परोपकारिणी सभा के लिए उनका स्नेह छत्रछाया के समान रहा। वर्तमान में श्री आर्य जी सभा के संरक्षक थे। उक्त दोनों ही स्मृतिशेष अधिकारी १७.११.१९८५ को सभा के ट्रस्टी सदस्य चयनित हुए थे और अपने अन्तिम जीवनकाल तक रहे। श्री गजानन्द आर्य को ०९.११.८६ की बैठक में सभा के मन्त्री का दायित्व सौंपा गया, जिसको उन्होंने सन् २००० तक अत्यन्त सक्रियता से निभाया। सन् २००० में ही उनको प्रधान निर्वाचित किया। इस पद पर वे २०१५ तक कार्यरत रहे। उसके बाद उनको संरक्षक के रूप में सम्मानित पद प्रदान किया गया। लगभग ३३ वर्ष की दीर्घ अवधि तक सभा से संयुक्त रहकर उसका तन-मन-धन से सहयोग करने वाले वे एकमात्र अधिकारी रहे हैं। उनकी समर्पित सेवाओं के फलस्वरूप सभा की ओर से उनका सन् २०१० में एक करोड़ से अधिक धनराशि से सम्मान किया गया। वह सम्पूर्ण धनराशि उन्होंने परोपकारिणी सभा को समर्पित कर दी थी। उस अवसर पर उनका अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ था, जो आज उनकी स्मृतियों का साक्षी है।

लोक में परम्परागत उक्ति प्रसिद्ध है कि सरस्वती और लक्ष्मी का एकत्र निवास नहीं होता (हालांकि वर्तमान युग में यह उक्ति अर्थहीन सिद्ध हो चुकी है)। श्री गजानन्द आर्य जी के दक्षिण हाथ में सरस्वती थी तो वामहस्त में लक्ष्मी थी। वे एक आर्य लेखक भी थे, व्यवसायी भी थे, दानी भी थे, मानी भी थे। वर्तमान समय के ईर्ष्या-विरोध के प्रदूषण से ओतप्रोत वातावरण में उनको 'अजातशत्रु आर्य' कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। विनम्रता, सरलता, निरभिमानिता, उदारता, भद्रता उनके स्वाभाविक गुण थे। मेरा परिचय भी उनसे ऐसे ही संयोग से हुआ था। सन् १९८३-८४ की बात है। वाल्मीकीय रामायण पर प्रक्षेपानुसन्धान का शोधकार्य करने का उपक्रम करना मैंने आरम्भ किया था। तत्सम्बन्धी जो पुस्तकें अध्ययनार्थ मैंने क्रय की थीं, उनमें श्री गजानन्द जी द्वारा लिखित **'वीरांगना महारानी कैकेयी'** नामक पुस्तक भी थी। उसमें उन्होंने कैकेयी को महिमामण्डित किया है। तब तक मैं उनसे निजता से परिचित नहीं था। मैंने कुछ तर्क-प्रमाण प्रस्तुत करके उनसे पत्र के माध्यम से इस विषयक असहमति व्यक्त की थी। अजमेर में ऋषि-मेला के अवसर पर हुई भेंट के अवसर पर उन्होंने उदारतापूर्वक मेरे परामर्श को स्वीकार किया और कहा कि भविष्य में मैं चाहूँगा कि यह प्रकाशित न हो। उन्होंने बताया कि हिन्दी के कवि श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कलकत्ता में वक्तव्य देते हुए इस प्रकार का महिमामण्डन किया करते थे। उन्हीं से प्रभावित होकर मैंने इस पुस्तिका का लेखन किया है। ऐसे सत्यग्राही कम ही मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त उनके द्वारा लिखित छह पुस्तकें और हैं जो आर्यसामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं और व्यवहारोपयोगी भी हैं। वे हैं- **'आर्यसमाजोदय'**, **'आर्यसमाज की मान्यताएँ'** **'मानव निर्माण के स्वर्ण सिद्धान्त'** **'सन्ध्या में आनन्द'** **'यज्ञ क्यों'** और **'वेद सौरभ'**। पुस्तकों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में भी उनके लेख, कहानी आदि प्रकाशित होते रहे हैं। मैंने उनके जीवन को अनेक बार निकट से देखा था और यह अनुभव किया कि उनके जीवन में कथनी-करनी का भेद नहीं था। जो लेखन में था वही उनके आचरण में था और जो आचरण में था वहीं लेखन में था। उनका जीवन आर्य-सिद्धान्तों के अनुकूल था। इसी कारण वे अपने नाम के साथ 'आर्य' विशेषण गौरव के साथ लगाते थे।

आर्यत्व के ये संस्कार और दृढ़ता उन्हें अपने पिताश्री से मिले थे। पिता श्री लालमन आर्य स्वयं दृढ़ आर्य थे और आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। अग्रणी आर्यों में उनका नाम था। माता लक्ष्मी देवी धार्मिक थीं तथा अपने पति की सहयोगिनी थीं। ऐसे आर्य

परिवार में आपका जन्म सन् १९३० में गाँव शेरड़ा, जिला गंगानगर (राजस्थान) में हुआ। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आप हिसार (हरियाणा) आ गये। वहाँ डी.ए.वी. स्कूल से आपने विद्यालय स्तरीय शिक्षा प्राप्त की। लाहौर से 'हिन्दी रत्न' परीक्षा उत्तीर्ण की। घरेलू परिस्थितियों की विवशता के कारण आप महाविद्यालय स्तरीय शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके। उसके पश्चात् आपने अपने पिताश्री के साथ वस्त्र-व्यवसाय प्रारम्भ किया। उसको आगे बढ़ाते हुए 'इकॉनोमिक ट्रान्सपोर्ट ऑर्गेनाइज़ेशन' का व्यवसाय शुरु किया, जिसमें आपको पर्याप्त सफलता मिली। आपने अपने धन का सदुपयोग पारिवारिक उन्नति के साथ-साथ आर्यसमाज की उन्नति के लिए यथाशक्ति किया है। आपके आर्यत्व के आचरण के कारण आज आपकी सन्तानें भी आर्यत्व से संस्कारित हैं, आपके परिवार के अन्य सदस्य भी आर्य संस्कारों से दीक्षित हैं।

आपके परिवार और आपका एक साहसिक उदाहरण आर्यसमाज के सुधारपरक प्रकरण में आर्यसमाज के इतिहास में अवश्य अंकित किया जाता रहेगा। रुढ़िवादी भारतीय समाज में विधवाओं की दयनीय दशा थी और उनका पुनर्विवाह वर्जित था। यदि कोई विधवा-विवाह करता था तो उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। आर्यसमाज ने विधवा-जीवन के उद्धार को अपना उद्देश्य बनाया। रुढ़िवादिता के उस युग में आपने विधवा युवती तारामणि से सन् १९५१ में विवाह करके एक क्रान्तिकारी उदाहरण प्रस्तुत किया। इस उदाहरण से आपकी और आपके परिवार की आर्यसामाजिक दृढ़ता का आकलन किया जा सकता है। यह इस बात का प्रतीक है कि सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आपने किस प्रकार संघर्ष किया है। आपने आपने जीवन में अन्धविश्वास, आडम्बर, पाखण्ड, बाल-विवाह, मूर्तिपूजा आदि कुरीतियों का उन्मूलन करने की दिशा में लेखन और वक्तव्यों के माध्यम से जनसामान्य में जागरूकता का कार्य किया। इतना ही नहीं, जीवनभर वे 'सत्यार्थप्रकाश' और अन्य आर्य साहित्य का वितरण समय-समय पर नि:शुल्क और आधे मूल्य पर कराते रहे। आर्यसमाज बड़ा बाजार कलकत्ता के भवन निर्माण में गजानन्द जी का प्रमुख सहयोग और श्रम था। उनके इन सभी प्रयत्नों को देखकर हम कह सकते हैं कि वे सर्वात्मना आर्यसमाज के लिए समर्पित थे।

जिन लोगों ने नब्बे के दशक तक के ऋषि-उद्यान परिसर के जीर्ण-शीर्ण भवनों और झाड़-झंखाड़ भरे मैदानों को देखा है, वे इसमें हुए कायाकल्प एवं विकास के साक्षात् द्रष्टा हैं। यह सब परिवर्तन स्व. गजानन्द जी और स्व. डॉ. धर्मवीर जी के समन्वित नेतृत्व और प्रयासों का प्रतिफल है। यह श्रेय भी उनको जाता है कि उन्होंने अपनी कार्यकारिणी तथा गुरुकुल के सदस्यों से यथायोग्य सहयोग प्राप्त किया और विकास के कार्य को प्रगति प्रदान की। इन दोनों के कार्यकाल में हुई परोपकारिणी सभा की उन्नति, प्रगति, सुव्यवस्था को सभा का स्वर्णकाल कहा जा सकता है। सभा की कार्यकारिणी में जब से दोनों का सामञ्जस्य बना, तो दोनों का सौहार्द एवं स्नेह अटूट बनता गया। सभा-संगठनों की राजनीति में सभी लोग समर्थक नहीं हो पाते। कुछ लोगों ने उनके सौहार्द एवं स्नेह को भंग करने का प्रयास भी किया, किन्तु वह अन्त तक अटूट रहा। दोनों का यह सौहार्द-स्नेह हार्दिक संचेतना में एकाकार हो चुका था और कई बार बाहर भी छलक जाता था। मैंने परस्पर के संवाद में एकाधिक बार दोनों को भावुक होकर आँसू पोंछते देखा है। श्री गजानन्द जी को डॉ. धर्मवीर जी पितृवत् सम्मान देते थे और गजानन्द जी धर्मवीर जी को पुत्रवत् स्नेह देते थे। इसी स्नेहसिक्त व्यवहार का सुपरिणाम था-परोपकारिणी सभा का चहुँमुखी उन्नयन। वे सभा के लिए १+१=दो न होकर एक और एक ग्यारह थे।

श्री गजानन्द जी सभा के प्रकरणों में उदारमना भी थे और सुलझे हुए भी थे। वे वेदभक्त भी थे, ऋषिभक्त भी थे और परोपकारिणी-भक्त भी थे। परोपकारिणी के लिए उन्होंने न केवल स्वयं उदारता से आर्थिक सहयोग किया था अपितु अपने सभी परिजनों और सम्बन्धियों को भी प्रेरित किया था। उनके समक्ष चाहे कितना ही प्रभावशाली व्यक्ति आया, उन्होंने सभा के अहित से कभी समझौता नहीं किया। ऐसे व्यक्ति का मिलना किसी भी सभा-संगठन के लिए सौभाग्यवर्धक होता है और जाना दुर्भाग्य। ऐसे व्यक्ति के जाने से निश्चय ही वह क्षति होती है जिसकी पूर्ति नहीं हो पाती। परोपकारी परिवार एवं परोपकारिणी सभा उनको कृतज्ञतापूर्वक हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है!!

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

मृत्यु सूक्त-४६

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
आनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे।।

हम इस वेदज्ञान की चर्चा में ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ वें सूक्त के ७ वें मन्त्र की चर्चा कर रहे हैं और इस चर्चा में महिलाओं को मृत्यु की परिस्थिति में कैसा होना है, इसकी चर्चा है। इसका देवता पितृमेध है। मूल बात समझने की है कि जो लोग यह मानते हैं कि पति के साथ पत्नी को जलना चाहिए, ऐसा तो इस मन्त्र में नहीं लिखा है। इसका अनर्थ करने के लिए कुछ लोग '**अग्रे के स्थान पर अग्ने**' ऐसा प्रयोग करते हैं। विद्वान् तो ऐसा नहीं करेंगे, लेकिन जो दुर्बुद्धि लोग हैं वे **आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे** में **अग्रे** शब्द को, जो मूल शब्द है उसको **अग्ने** कहकर 'पति के साथ जलना चाहिए' ऐसा अर्थ कर देते हैं।

पहली बात तो यह है कि वह ना तो पति के साथ पैदा हुई, न पति के साथ समानता से बड़ी हुई, वह तो बड़े होकर पति से मिली तो उसके साथ मरने की बात कैसे आयी? क्यों मरे? जब वे साथ पैदा ही नहीं हुए तो साथ मरने की बात क्यों? साथ मरने का कोई उद्देश्य, कोई प्रयोजन होना चाहिए। यदि साथ ही मरना होता तो महिला जिन्दा ही क्यों होती, दोनों मर ही चुके होते। पति को तो मारा नहीं गया था और इसे आप मार रहे हो। आप मार करके, मरे के साथ लाना चाहते हो, यह तो ऐसा ही हुआ कि एक तो हार गया था और जीतने वाले के आपने पैर बाँध दिए कि तू भी ऐसे ही हार जा। यह अन्याय है, यह अनुचित है और यह वेद-विरुद्ध है। वेद यह कहता है कि हमारा कोई साथी था और नहीं रहा, कोई बात नहीं- आप दूसरा साथी चुन सकते हैं, इसमें कई विकल्प हैं। विधवा का विवाह हो सकता है। सन्तान गोद भी ली जा सकती है। ऋषि दयानन्द तो नियोग की प्रथा का भी विधान करते हैं।

जो लोग यह मानते हैं कि यह नियोग की प्रथा अनुचित है, तो अनुचित का झगड़ा समाज में केवल तब होता है जब समाज उसे न माने। जो बात समाज में मान्य होती है, वह उचित कहलाती है, जो समाज में मान्य या स्वीकार्य नहीं है वह अनुचित कहलाती है, बस इतना ही तो अन्तर है। ये सारे विकल्प हैं।

जो लोग यह समझते हैं कि यह श्रेष्ठता है कि पति के साथ पत्नी भी जले, यह नितान्त अनुचित है, क्योंकि जीवन देने का और जीवन लेने का काम मनुष्य का नहीं है। यह परमेश्वर की व्यवस्था का काम है। जो मरने वाला पति के रूप में मरा है वह पत्नी ने नहीं मारा, किसी दूसरे ने नहीं मारा, वह तो प्रकृति के नियमों से, प्रकृति के स्वभाव से मर गया। तो प्रकृति ने जिसे नहीं मारा, आप उसको क्यों मारेंगे? आप उसके साथ यह जबर्दस्ती क्यों करेंगे? वास्तव में इसके पीछे जो दुरभिसन्धि है वह मूल रूप से स्वार्थ की है। आप मध्यकाल में देखेंगे कि महिलाओं को जबर्दस्ती सती कर देते थे। उनको अलंकृत करके, सजा-धजा कर जबर्दस्ती ले जाना, चिता पर बाँध देना, बाँसों से दबा देना, ढोल-नगाड़े बजाकर उसके चिल्लाने को दबा देना, ये सारी बातें मनुष्य के द्वारा रचा गया षड्यन्त्र है। न तो यह धर्म है और न ही धार्मिकता का इसमें लेशमात्र भी अंश है। वेद तो कहता है वह विधवा रहेगी ही नहीं। **आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे**, यहाँ तो घर में ले जाने की बात कर रहे हैं और यह स्वार्थी लोग उसे श्मशान में ले जाने की बात

कर रहे हैं कि यहाँ लिखा है कि उसे **अग्नि** में चढ़ा दो। अग्नि में क्यों ले जाओ? क्या अग्नि में कोई आपने आप जाना चाहता है? जब कोई नहीं चाहता तो एक जीवित महिला क्यों जायेगी?

मूल बात है कि दु:ख तो है। आप किसी के साथ रह रहे हैं, आपने उसके साथ सुख का, अच्छेपन का अनुभव किया है तो आपकी स्मृतियाँ स्वाभाविक रूप से उससे संत्रस्त रहेंगी, उसे याद करेंगी, उसके अभाव का अनुभव करेंगी, तो आपको दु:ख होगा। लेकिन वेद कहता है कि उस दु:ख में हमको डूबना नहीं है। हमारा वह दु:ख कोई अनिवार्य साथी नहीं है। हमारी स्मृतियाँ अच्छी हैं, ठीक हैं, लेकिन दु:ख के कारणों को हमें दूर करना है। चाहे हम अपने एकाकीपन को दूर करें, चाहे कर्त्तव्य में लगकर अधूरेपन को दूर करें या और कोई अतिरिक्त काम करना है उसको करें। वेद पूरी स्वतन्त्रता इसमें देता है। वास्तव में यह विवाद जिन लोगों ने प्रारम्भ किया है, वह स्वार्थवश, लोभवश किया है। पति के बाद जो सम्पत्ति है उस पर अधिकार कैसे किया जाये, इस उद्देश्य से किया है तो उसके लिए लोगों ने एक उपाय निकाला कि ऐसी स्त्री को विधवा कहकर घर से निकाल दो या घर के कोने में पटक दो।

आप उसके साथ अन्याय एक तरह से नहीं, बहुत तरह से करते हो। पहला तो अन्याय आप यही करते हो कि आप उसे विधवा कहने वाले होते कौन हो, उसे विधवा बनाने की परिस्थितियाँ आपके द्वारा बनाई होती हैं, कभी बाल-विवाह के रूप में, कभी वृद्ध से विवाह के रूप में, कभी बेमेल विवाह के रूप में, कभी कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण जिसमें उसका कोई योगदान नहीं है। और यदि इसमें यह बात ठीक है तो दूसरी बात ठीक क्यों नहीं है? यदि स्त्री को सती होना चाहिये तो स्त्री के मरने पर पुरुष को भी जल जाना चाहिये, जबकि कोई पुरुष जलता नहीं। यदि स्त्री मर जाती है तो पुरुष विवाह कर लेता है, उसको तो आप बुरा नहीं मानते और यदि स्त्री विवाह कर लेती है तो उसमें आपको आपत्ति होने लगती है।

यह जो पक्षपात का भाव है, यह पुरुष प्रधान होने से, पुरुष चिन्तन होने से अपने-अपने हिसाब से किया गया है। मूल रूप से भौतिक सम्पत्ति के अपहरण की व्यवस्था है और इसके लिए आप उन्हें कितने भी दु:ख दे सकते हैं, कितने भी कष्ट दे सकते हैं, और ऐसे कष्ट आप हजारों वर्षों से देते आये हैं। आप धर्म के नाम पर उसे विधवा भी बनाते हैं, आप देवदासी के रूप में मन्दिरों को चढ़ा देते हैं। हजारों लाखों स्त्रियों के साथ आपने इसी तरह से किया है।

यह सब मनुष्य के द्वारा किया गया अपराध है, शोषण है। लेकिन जब समाज के बहुत लोग उसे मानते हैं तो थोड़े लोग उसका विरोध नहीं कर पाते। जो पीड़ित है वह उसका प्रतिकार नहीं कर पाता, उसके साथ संघर्ष नहीं कर पाता और मानने के लिये, झेलने के लिये विवश हो जाता है। यह बात वेद समझा रहा है कि आप दूसरे के अधिकारों का जो हनन करते हो, यह अवैदिक है, पाप है, अपराध है। इस दृष्टि से जब आप इस मन्त्र को देखेंगे तो यह सब धर्म के नाम पर किया जाने वाला पाखण्ड नितान्त अनुचित है।

आप आज स्त्री-स्वतन्त्रता के नाम पर बात तो करते हैं पर जितनी स्वतन्त्रता वेद के द्वारा घोषित है, दिये जाने की बात कही गयी है, उस तक तो हम अभी पहुँचे ही नहीं है। आज भी हमारे यहाँ बहुत सुपठित लोग भी अपने बालकों को तो अच्छी शिक्षा दिलाते हैं लेकिन अपनी बालिकाओं के लिये उतने प्रयत्नशील नहीं रहते। उन्हें लगता है कि इसे हमारे घर में तो रहना नहीं है, हमें क्या फ़ायदा है? पढ़ाने से तो दूसरे के ही काम आयेगा। लेकिन सम्बन्ध तो आपका ही रहेगा। आपके घर में भी तो बहू आयेगी, क्या उसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार आपको लाभ देगा? विवाह का एक विचित्र नियम है कि आपके घर की लड़की दूसरे के घर में जाती है और दूसरे की लड़की आपके घर में आती है। यदि आप अपनी लड़की को दूसरे के घर का समझकर अन्याय करेंगे तो अगला भी ऐसा ही करेगा। फिर दोनों तरफ से मूर्खता ही तो आपके जिम्मे आयी। आपने की तो उसके पास गई, उसने की तो आपके पास आयी। यह जो हमारे अन्दर प्रवृत्ति है, इस प्रवृत्ति में एक तो लोभ यह था कि हम उसकी सम्पत्ति को

हड़प लें और वर्तमान काल में जो परिस्थिति हम अब भी देख रहे हैं उसमें मुख्य कारण है कि हमने उनको पहले तो स्वयं सबल, समर्थ बनने से रोका और जब वे अपनी असमर्थतता से, अपनी अज्ञानता, अधूरेपन से पीड़ित हैं तो उसका दण्ड भी आप उन्हीं को देना चाहते हैं, जिसके अपराधी आप स्वयं हैं।

वेद कहता है कि यह गलत है, अनुचित है। जो अपराध जिसने नहीं किया उसका दण्ड उसे नहीं मिलना चाहिये, इसलिये उसे उसके अधिकार देने चाहिएँ, उसके अवसर देने चाहिएँ। आप परिवार के सदस्यों के साथ न्याय करने वाले बनें, पक्षपात करनेवाले शोषण करनेवाले नहीं। वेद में एक मन्त्र आता है जिसकी चर्चा मैंने पहले की थी-**शचि-पौलोमी** सूक्त में। वहाँ एक महिला जब अपने परिवार का व्याख्यान कर रही है तो कहती है- **मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्। उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।** अर्थात् एक व्यक्ति की परिवार में क्या भूमिका है और परिवार के सदस्यों के साथ उसका सम्बन्ध क्या है, उनका आपस का समन्वय कैसा है, वे किस पद-प्रतिष्ठा और विचार के धरातल पर हैं उसका बहुत सुन्दर चित्रण इन पंक्तियों में है। एक महिला कह रही है, **मम पुत्राः शत्रुहणः** मेरे जो पुत्र हैं, वे बलवान् हैं, समर्थ हैं, योग्य हैं, वे किसी शत्रु से परास्त होने वाले नहीं हैं। उनके मार्ग में जो बाधक बनेंगे उनको वे समाप्त कर सकते हैं। वे शत्रुओं का विनाश कर देते हैं। मेरे बालक अच्छे हैं तो मेरी बालिका कैसी है- **दुहिता विराट्**। मेरी दुहिता, मेरी कन्या विराट्, तेजस्विनी है, विशेष रूप से तेजस्विनी है। उसका अपने परिवेश में वर्चस्व है। **उताहमस्मि संजया** और मैंने भी कभी पराजय नहीं देखी है। मेरी भावना भी जयशील है, विजय की है, आशा की है, उत्कर्ष की है। **पत्यो मे श्लोक उत्तमः** और मेरे परिवार के जो सदस्य हैं उनका मेरे प्रति बहुत सद्भाव है। उनकी मेरे साथ अनुकूलता है। मैंने अपने बच्चों का निर्माण करने में लड़के और लड़की में भेद नहीं किया है। मैंने अपने पुत्रों को तो योग्य बनाया ही है, मैंने अपनी पुत्रियों को भी उतना ही योग्य बनाया है। मैंने उनकी बौद्धिक क्षमताओं का विकास किया है, शारीरिक योग्यताओं को बनाया है। स्त्रियों को विकसित होने का सम्पूर्ण अवसर दिया है। इसीलिये मन्त्र में कहा- **मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्। उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः**। परिवार के जो सारे सदस्य हैं उनमें सब एक-दूसरे के विकास में सहायक हैं, एक-दूसरे के विकास के प्रशंसक हैं, सहयोगी हैं। जैसे मैंने अपने बच्चों को आगे बढ़ाया है, मैंने स्वयं भी उस सामर्थ्य को प्राप्त किया है और मेरे इन कार्यों का, मेरा पति प्रशंसक है। मैंने विरोध पैदा करके कोई काम नहीं किया है, अलगाव, दूरी, भेदभाव करके नहीं किया है। मैं सबकी सहमति से काम करनेवाली हूँ। सबके लाभ, भले व उन्नति की बात सोचने वाली हूँ। मेरा पति मेरा गुणगान करता है, मेरी कीर्ति गाता है।

तो हमारे यहाँ वैदिक दृष्टि से जो महिला का स्थान है वह बहुत ऊँचा है, बड़ा है और उसके द्वारा परिवेश को कितना सुन्दर रूप दिया जा सकता है यह बात इस मन्त्र के अन्दर दिखाई देती है। वर्तमान का जो अन्याय है, इस अन्याय को दूर करने के जो उपाय हम कर रहे हैं, उनमें ठीक उपाय तो यह है कि सबकी समझ से इस विचार को विकसित करें। संघर्ष का, अपने परिवार के साथ विरोध का, लड़ाई का जो उपाय है वह उपाय हमारे लाभ का नहीं है, नुकसान का है। इसलिए वेद पूरे परिवार को समन्वय के साथ, सामञ्जस्य के साथ उन्नति की ओर ले जाने की बात करता है। विरोध, विघटन की बात नहीं करता।

भूल-सुधार

परोपकारी जनवरी द्वितीय २०२० के आवरण पृष्ठ संख्या-२ पर दिवंगत जनों श्री रतिराम शर्मा, सिलीगुड़ी एवं श्री राव हरिश्चन्द्र आर्य, नागपुर का चित्र छपा है, परन्तु असावधानीवश दोनों का परिचय आपस में बदल गया है। पाठकों को हुई असुविधा के लिये खेद है।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महर्षि दयानन्द को इतिहास-निकाला- अभी-अभी हमें चलभाष से यह हृदय-विदारक सूचना मिली है कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एक प्रश्नावली में उत्तरदाता को जनजागरण, समाज-सेवा, स्वराज्य के प्रथम उद्घोषक के रूप में एक नाम पर टिक मार्क (चिह्नित) करना था। एक रिसर्चस्कॉलर ने ऋषि दयानन्द के नाम पर टिक कर दिया। दूसरा नाम महात्मा गाँधी का था। कमीशन ने उस प्रतियोगिता (अथवा परीक्षा) से महर्षि का नाम ही हटा दिया है। काँग्रेस के राज में तो देश-निकाला पूरा-पूरा न मिला। योगी आदित्यनाथ के राज में महर्षि दयानन्द को इतिहास से देश-निकाला दे दिया गया है। इसके पीछे कौन है? यह पता करना होगा। वीर सावरकर के पीछे काँग्रेस साम्यवादी पड़े हैं।

योगी जी को मन्दिर-निर्माण प्रचार-अभियान से अवकाश नहीं फिर और-और मूर्तियाँ खड़ी करनी हैं। इतिहास को रौंदने का यह अभियान कब तक चलेगा? इस घृणित पाप और निन्दनीय षड्यन्त्र से टक्कर लेने के लिये शीत बीत जाने पर सेवक इलाहाबाद जावेगा। अभी तो वहाँ से ही एक दर्दीला युवा स्कॉलर यहाँ आयेगा। आर्यसमाज के योगी और साधु तो अपने चेले-चेलियों के संग शिविरों में मस्त व्यस्त हैं। इस जीवन-मरण के प्रश्न पर हम तो चुप नहीं बैठेंगे। हारें या जीतें, पाप-शैल को भू पर बिछाने निकलना ही पड़ेगा।

विश्व इतिहास की एक अनूठी घटना- राष्ट्रों, जातियों तथा सभा, संस्थाओं का उत्थान-पतन होता रहता है। वैभवशाली उन्नत देश भी पराधीन हो जाते हैं। विश्व इतिहास में किसी देश व जाति ने बिना युद्ध किये स्वतन्त्रता कभी नहीं पाई। हिंसा, क्रान्ति व संग्राम से ही स्वराज्य दिलाने की घोषणा की। उनके अहिंसा शस्त्र की प्रथम परीक्षा सन् १९१९ में हुई। दिल्ली में नंगी संगीनों से अपना 'सीना बे कीना' (निर्वैर छाती) शूरता की शान स्वामी श्रद्धानन्द ने अड़ा दी। निर्दोष जनता पर गोली चलाने से पहले ''मेरी छाती पर संगीनें घोंपो। मुझे पहले गोली मारो।''

पक्ष-विपक्ष ने पाप किया- यह घोष गाँधी जी का नहीं संघर्षशील वीर-धीर संन्यासी श्रद्धानन्द का था। किसी भी देश में स्वराज्य प्राप्ति के लिये किसी सेनानी ने अहिंसा का ऐसा चमत्कार नहीं दिखाया। गाँधी कभी भी इस इतिहास को दोहरा न सके। इस अद्भुत घटना का शताब्दी वर्ष तीन मास में बीत जावेगा। काँग्रेस व भाजपा के बड़बोले नेता एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर वाकयुद्ध करते रहते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान पर्व पर इन दोनों दलों ने उस अमर सेनानी के इस शौर्य का स्मरण करके उसे नमन नहीं किया। इतिहास को रौंदने का पाप पक्ष और विपक्ष दोनों ने बढ़-चढ़ कर किया।

आर्यसमाज भी कम दोषी नहीं। जलियाँवालाबाग के रक्तिम काण्ड से जितना आर्यसमाज जुड़ा था उतना और कौन था? इस स्वर्णिम बलिदानी इतिहास के नामी हीरो हमारे पूज्य डॉ. सत्यपाल जी, महाशय रत्तो (रत्नचन्द) थे। यह सारा संसार जाने। कितने हुतात्मा तब आर्यसमाज ने दिये? १२ अप्रैल सन् २०१९ के अंग्रेजी ट्रिब्यून के अंक के लेख व चित्र देख लीजिये। श्री डॉ. सत्यपाल तथा उनके पूज्य आर्यसमाजी पिता कारागार में विशेष पिंजरों में बन्दी बनाकर रखे गये। वहीं महाशय कृष्ण और चौधरी रामभजदत्त की कोटि के सर्वमान्य आर्य नेता बन्दी थे। स्वामी अनुभवानन्द संन्यासी जेल में थे और फिर पीड़ितों के प्राण-त्राण श्रद्धानन्द पंजाब की रक्षा को आगे आये?

आर्यसमाज ने इस शताब्दी पर एक अच्छी प्रचार-यात्रा भी न निकाली। यह कोई छोटा पाप नहीं जो आर्यसमाज के लीडरों ने किया। कुछ आर्यवीर उनका डंका बजाने में लगे थे। इस शताब्दी वर्ष की समाप्ति तक 'शौर्य शताब्दी पुस्तक माला' की बारह महत्त्वपूर्ण पठनीय स्मरणीय पुस्तकें पाठकों के हाथों में पहुँचा दूँगा। एक लम्बे समय तक इस पुस्तकमाला की देशभर में मीठी-चर्चा चलती रहेगी। कोई भी राजनीतिक पार्टी आर्यसमाज का, इसके संस्थापक का, इसके हुतात्माओं का गौरव सहन नहीं कर सकती। यह एक कटु सत्य है।

'भाई अब्दुल रशीद'- आजकल मौलाना औवेसी, राहुल बाबू, कामरेड पार्टी स्वातन्त्र्य वीर सावरकर जी की निन्दा करते हुये गोडसे को बड़ा याद करते हैं। बुढ़ापे में विवाह रचाने वाले कांग्रेसी प्रवक्ता बार-बार कहते हैं कि

गोडसे हिन्दूसभाई रहा था। क्या काँग्रेस उन मुस्लिमलीगी नेताओं की सूची प्रकाशित करेगी जो पाकिस्तान बनवाने के लिये **काँग्रेस से ट्रेनिंग लेकर** मुस्लिम लीग में गये। अधिकांश पाकिस्तान-निर्माता भूतपूर्व काँग्रेसी ही थे। तीन के नाम हम अभी बताये देते हैं। जिन्नाह क्या काँग्रेसी नहीं था? मियाँ इफ़्तख़ार हुसैन तथा मौलाना दाउद गज़नवी दोनों पंजाब काँग्रेस के प्रधान रहे। दोनों पाकिस्तान के निर्माता बने। दोनों के हाथ हिन्दुओं-सिखों के लहू से रंगे गये या नहीं? यह काँग्रेस के प्रवक्ता बतायें।

जब क्रूर हत्यारे ने स्वामी श्रद्धानन्द जी पर पिस्तौल से पाँच फायर किये। चार गोलियाँ **उनकी छाती** में घुस गईं और वे वीरगति पा गये। हत्यारे अब्दुल रशीद को बापू गाँधीजी ने खुलकर भाई अब्दुल रशीद कहा। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। क्या काँग्रेस को बताना पड़ेगा कि मालाबार में हिन्दुओं के लहू से स्नान करने वाले मोपला मुसलमानों को गाँधी जी ने clean chit दी थी? देवियों का सतीत्व लूटा गया। परिवार के लोगों को सामने बिठाकर उनकी बहु-बेटियों से बलात्कार...सहस्त्रों को बलात् मुसलमान बनाया गया। क्या काँग्रेस ने कभी इस कलंकपूर्ण इतिहास पर अश्रुपात किया? ओवैसी के कायदेमिल्लत कासिम रिज़वी ने असंख्य हिन्दुओं की हत्या करवाई। कहो तो नेहरु सरकार के एक उच्च अधिकारी का उस समय का लेख छपवा दूँ? काँग्रेस को अपने किये पापों पर लज्जा आनी चाहिये।

मालवीय जी से कौन मिला- स्वयं को सर्वज्ञ माननेवाले एक लेखक ने लिखा है कि प्रो. महेशप्रसाद जी की पुत्री कल्याणी देवी जी को जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पोंगापन्थी ब्राह्मणों के दबाव में वेद पढ़ाने से इनकार कर दिया गया तब आर्यसमाज के विद्वानों ने पं. मदनमोहन मालवीय से भेंट करके अपना पक्ष रखा। तब मालवीय जी के हस्तक्षेप से कल्याणी देवी को वेद की कक्षा में प्रवेश मिल गया। उ.प्र. से ही एक भाई ने उन विद्वानों का नाम इस स्तम्भ में लिखने की माँग की है।

हमारा निवेदन है कि 'लौह पुरुष' ग्रन्थ में हमने इस प्रसंग पर विस्तार से प्रामाणिक प्रकाश डाला है। जिस लेखक के लेख का उस भाई ने संकेत किया है उसका कथन यथार्थ नहीं। उसे या तो प्रामाणिक ज्ञान नहीं या फिर वह मालवीय जी से मिलनेवाले आर्यसमाज के **यशस्वी, प्रतापी संन्यासी नेता स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का नाम नहीं देना चाहता होगा।**

केवल स्वामी जी महाराज ने ही सार्वदेशिक के कार्यकर्त्ता प्रधान के रूप में मालवीय जी से इस विषय में बात की थी। वह विद्वान् तो थे ही, मालवीय जी उनका बड़ा सम्मान करते थे। उनकी शूरता, वीरता तथा देश-सेवा से मालवीय जी सुपरिचित थे। हमने पूज्य स्वामीजी महाराज के श्रीमुख से भी यह सारी घटना सुनी थी।

एक बात और नोट कर लें कि जब कल्याणी देवी ने **परीक्षा उत्तीर्ण कर ली तो वह कक्षा ही बन्द कर दी गई।** काशी के ब्राह्मण अपना हठ छोड़ने वाले नहीं थे। हिन्दू समाज का कोई नेता और **कोई संगठन स्त्रियों को वेद-अध्ययन का अधिकार देने के लिये तैयार नहीं था। यही तो हिन्दुत्व है।**

जब गोरे डी.सी. को झुकना पड़ा- हरियाणा के आर्यवीरों के एक अग्रणी श्री अभयजी के पिताजी एक निष्ठावान् विद्वान् और सेवानिवृत्त प्राध्यापक हैं। आपने रोहतक के भवानी स्टैण्ड पर विश्वप्रसिद्ध आर्य कहानीकार सुदर्शन जी की गोरे पादरी से टक्कर का पूरा वृत्तान्त देने को कहा है। यह प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों की घटना है। चौ. छोटूराम जी यह चाहते थे कि 'जाट गज़ट' का सम्पादक अनुभवी पत्रकार हो और हो भी आर्यसमाजी। आपका प्रभाव व परिचय व्यापक था। आपने महाशय सुदर्शन जी को खींच लिया। उन दिनों सम्पादक के पद पर कौन आसीन था और किसका नाम छपता था यह तो अधिकारपूर्वक हम नहीं कह सकते, परन्तु व्यवहार में तो सुदर्शन जी ही सम्पादक थे। एक दिन सुदर्शन जी 'जाट गज़ट' कार्यालय को जा रहे थे। भवानी स्टैण्ड रोहतक लम्बे समय तक प्रचार व जलसों के लिये उपयुक्त स्थान माना जाता था। सुदर्शन जी ने देखा कि एक गोरा पादरी ईसाई मत का बड़े जोश से प्रचार कर रहा था। बड़ी संख्या में हिन्दू उसे सुन रहे थे।

सुदर्शन जी ने उससे थोड़ी दूरी पर ईसाई मत पर बहुत प्रभावशाली भाषण देना आरम्भ कर दिया। वे स्यालकोट के ईसाई कॉलेज में बाइबिल की परीक्षा में प्रथम आते रहे। सारी भीड़ सुदर्शन जी ने खींच ली। पादरी ने डी.सी. तक शिकायत कर दी। डी.सी. ने 'जाट गज़ट' की ज़मानत (security) ज़ब्त कर ली। इस पर चौ.

छोटूराम डी.सी. से जा भिड़े। हम युद्ध के लिये सेना में अपने जवानों को भर्ती भी करवायें और आप हमारा पत्र भी नहीं चलने देते। डी.सी. ने कहा, ''अच्छा जमानत तो ज़ब्त नहीं करते आप इस सम्पादक को हटा दें।''

चौधरी जी ने कहा, हमारा सम्पादक वही होगा जिसे हम चाहेंगे। वह इस बात पर अड़ गये। चौ. लालचन्द जी ने भी चौ. छोटूराम जी को पूरा साथ दिया। चौधरी छोटूराम जब अपनी बात पर अड़ गये तो गोरे डी.सी. को दृढ़ आर्यसमाजी जाट नेता चौधरी छोटूराम जी के सामने झुकना ही पड़ा। तब सुदर्शन जी की पत्नी भी रोहतक ही रहती थीं। एक साक्षात्कार में आपने हमें यह प्रसंग सुनाया था। दैनिक प्रताप में एक लेख में तभी छपा था। उपरोक्त घटना के कुछ समय पश्चात् सुदर्शन जी ने स्वयं ही रोहतक छोड़ दिया। हम सुदर्शन जी तथा चौधरी जी के धर्म-अनुराग को भावभरित हृदय से नमन करते हैं।

विविध विचार-चिन्तन- चलभाष पर इस बार बहुत प्रश्नों के उत्तर पूछे गये। धर्मप्रेमियों ने इन प्रश्नों के उत्तर कुछ विस्तार से परोपकारी में भी देने का अनुरोध किया। सब प्रश्नों पर अत्यधिक विस्तार से तो नहीं लिखा जा सकेगा। सर्वप्रथम हम अपनी ही एक भूल पर खेद प्रकट करते हैं। परोपकारी में हमने लिखा था कि श्रद्धेय लक्ष्मण जी का ऋषि-जीवन पर बड़ा ग्रन्थ (सम्पूर्ण जीवन-चरित्र) देवेन्द्र बाबू जी लिखित ऋषि-जीवन (पं. घासीराम जी द्वारा अनूदित) से पहले छप गया था। यह हमारी भूल थी। लक्ष्मण जी अपनी पुस्तकों के मुख्यपृष्ठ अथवा भूमिका के अन्त में लेखन अथवा प्रकाशन तिथि नहीं देते थे। इस कारण से भी हमसे भूल हो गई। लक्ष्मण जी लिखित 'ऋषि-जीवन कथा' तो देवेन्द्र बाबू जी के ग्रन्थ से पहले छप चुकी थी। उसका हिन्दी अनुवाद व सम्पादन भी हमीं ने किया है। उसमें भी पर्याप्त नई खोज है। लक्ष्मण जी के बड़े ग्रन्थ की प्रकाशकीय भूमिका तथा श्री मामराज जी के ऋषि-जीवन विषयक एक लेख से निर्विवाद रूप से यह पता चलता है कि लक्ष्मण जी का ग्रन्थ छपा तो उसी काल में था, परन्तु पं. घासीराम जी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ के कुछ पश्चात्।

'महर्षि दर्शन'- श्री नौबहार सिंह टोहानावालों का महर्षि दर्शन (काव्य) गुटका सन् १९३३ ई. में प्रकाशित हुआ था। यह हिन्दी में भी छपा, यह कथन ठीक नहीं है। एक लेखक ने नौबहार सिंह जी का निधन सन् १८८४ ई. में लिखा है। यह मनगढ़न्त इतिहास व चटपटी कल्पना है। हमने **उनके हैदराबाद सत्याग्रह** पर भी गीत पढ़े हैं। वह देश विभाजन के पश्चात् पटियाला में चल बसे। तब वह टोहाना नहीं रहते थे।

महाशय कृष्ण जी की एक महत्त्वपूर्ण देन- आर्य-सत्याग्रह हैदराबाद तथा मुक्ति-आन्दोलन पर नया-नया साहित्य प्रकाशित होता रहता है। यह किसी लेखक ने नहीं लिखा (हमने भी कभी नहीं लिखा) कि जब सार्वदेशिक सभा में कोई नेता हैदराबाद के लिये आन्दोलन का नेतृत्व करने को आगे नहीं आ रहा था तब महाशय कृष्ण जी ने महात्मा नारायण स्वामीजी को हैदराबाद के आर्यों का दु:ख निवारण करने और रक्तपात रोकने के लिये **प्रेरणा करते हुये कहा था कि चाहे इस कार्य में मर भी जाने का भय हो यह काम मुझको लेना चाहिये।**[१]

इतिहास की इस लुप्त गुप्त कड़ी का अनावरण करते हुये हमें गौरव हो रहा है। महात्मा नारायण स्वामीजी को नेतृत्व के लिये आगे करना महाशय जी की एक महत्त्वपूर्ण और अद्‌भुत देन है।

महात्मा नारायण स्वामी जी ने इसके आगे एक और महत्त्वपूर्ण वाक्य यह लिखा है, ''**मेरे लिये सन्तोष की बात केवल यह थी कि श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के लिये विश्वास था कि वे इस काम में मेरा साथ देंगे।**[२]''

इन दोनों लुप्त कड़ियों को नई पीढ़ी के आर्यवीर मुखरित करेंगे ऐसा हमें विश्वास है।

हुतात्मा वेदप्रकाश गौरव- कुछ वर्ष पूर्व वीर वेदप्रकाश के बलिदान के अमृत-महोत्सव पर डॉ. धर्मवीर जी और इन पंक्तियों का लेखक गुंजोटी महाराष्ट्र के विराट् सम्मेलन में पहुँचे जहाँ चार-पाँच प्रदेशों के आर्यजन उस समारोह में सम्मिलित हुये। एक दीन दरिद्र परिवार में जन्मे इस प्राणवीर को आर्यसमाज दक्षिण में बलिदान की अखण्ड परम्परा के जनक के रूप में इतिहास में स्थान दिलावे, ऐसा तब हमने कहा, लिखा व प्रचार करते आ रहे हैं। यही तो आर्यसमाज की विलक्षणता है। देशभर में उत्तर-दक्षिण में सहस्रों परिवारों ने अपने पुत्रों को **'वेदप्रकाश'** नाम दिया। आर्यों को इस आन्दोलन को देश-विदेश में प्रचारित करना है। यह लुप्त कड़ी न बनी रह जावे। सत्याग्रह के फील्डमार्शल पूज्य गुरुवर स्वतन्त्रानन्द

का यह ऐतिहासिक वाक्य हमारे लिये प्रेरणास्रोत है- ''इसके बाद हैदराबाद राज्य में धर्मवीरों के बलिदानों का ताँता लग गया।[३]''

यह आर्यसमाज की ही देन व उपलब्धि है। हिन्दू समाज देश धर्म की रक्षा के लिये ऐसा दूसरा नररत्न आज तक पैदा नहीं कर सका।

बहिष्कार कहाँ? कहाँ?- 'जीवन-यात्रा स्वामी श्रद्धानन्द' तथा पूज्य आत्माराम जी की जीवनी से प्रेरणा पाकर समय-समय पर आर्यों के बहिष्कार की घटनायें पढ़कर कई बन्धुओं ने यत्र-तत्र आर्यों के सामाजिक बहिष्कार के इतिहास पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखने का आदेश दिया है। पं. लेखराम वैदिक मिशन के युवक प्रकाशन की व्यवस्था कर दें तो इस नये अद्भुत विषय पर छः मास में ३०० पृष्ठ का प्रामाणिक ग्रन्थ दे दिया जावेगा। लीजिये अभी से कुछ प्रसाद दिया जाता है-

१. महात्मा मुंशीराम जी ने पटियाला, जालन्धर आदि के आर्यों को आज्ञा दी कि बहिष्कार करनेवाले पोपों का आर्य लोग प्रचण्ड बहिष्कार करें। ''सद्धर्म की ही विजय होगी।'' ऐसा ही हुआ।

२. माहेश्वरी समाज ने १२ वर्ष के लिये पं. आत्माराम जी का अत्यन्त क्रूरता से बहिष्कार किया। पं. लेखराम जी और पं. गुरुदत्त का नामी धर्मयोद्धा आत्माराम न डरा, न दबा और न झुका। विजयी आर्यवीर की जय।

३. जम्मू राज्य में अस्पृश्यता उन्मूलन व दलितोद्धार के लिये वीर रामचन्द्र के बलिदान के समय आर्यों को प्रताड़ित व बहिष्कृत किया गया। मीरपुर कोटली में पिता ने पुत्र को घर से निकलने को कहा। उसने मृत्युपर्यन्त पिता के घर में पैर न रखा। पिता का सम्मान तो करता था। उस बहिष्कृत आर्यवीर का दिल्ली में निधन हुआ। पं. भक्तरामजी पुराना किला दिल्ली को यातनायें दी गईं और बहिष्कृत भी हुये। उनकी कहानी सब भूल गये। उनके दर्शन हमने कई बारे किये।

४. इसी काल में पड़ोपियाँ ग्राम जिला स्यालकोट में एक सिख भाई को बचाने व धर्मच्युत न होने देने के लिये शुद्धि आन्दोलन का बिगुल बजाने वाले मालोमहे ग्राम के आर्यों का प्रचण्ड बहिष्कार हुआ। सात खण्डों के इतिहास में इसकी विस्तृत कहानी छपी है। पं. चमूपति जी लिखित इतिहास में भी है। एक भी आर्य ने क्षमा न माँगी। कोई डिगा नहीं, कोई झुका नहीं। राजेन्द्र 'जिज्ञासु' का जन्म उसी ग्राम में हुआ। बहिष्कृत आर्यों के मुख्य परिवार में उस काल में जन्म पाने का अभिमान है।

५. महाराष्ट्र में डॉ. धर्मवीरजी के पिता स्वतन्त्रता सेनानी पं. भीमसेन जी ने अपने ग्राम का सरपंच बनते समय पहला कार्य सामाजिक समरसता के लिये प्रीतिभोज करवाया तो उनका जोरदार बहिष्कार किया गया। पण्डित भीमसेन जी ने जन्माभिमानी पोंगापन्थियों का बहिष्कार करने की घोषणा कर दी। यह कहानी बहुत लम्बी है। शूरशिरोमणि श्याम भाई और पं. नरेन्द्र जी के योद्धा पं. भीमसेन जी ने पोपडम का दुर्ग ढहा दिया। जीत आर्यसमाज की हुई।

वे चल बसे- कुछ ही दिन में श्री गजानन्द जी तथा पं. सत्यानन्द जी चल बसे। दोनों के रिक्त स्थान की पूर्ति अति कठिन है। दोनों की मीठी यादें आर्यों को सताती-रुलाती रहेंगी।

दुखिया बन्धुओं की सेवा में- हरियाणा के आर्यवीरों का एक दल सिन्ध से धर्म बचाकर भारत में शरण लेनेवाले शरणार्थियों की सुधि लेने दिल्ली पहुँचा। उनकी अन्न-वस्त्र भेंट करके ठोस सेवा की। यज्ञ-हवन भी वहाँ किया। धर्मोपदेश दिया। फोटो खिंचवाने तो वहाँ नेता लोग जाते ही रहते है। इस प्रकार वैचारिक प्रसाद देनेवाले आर्यों की टोली को अपने मध्य पाकर वे हर्षित हुये। उनकी सहायता व सेवा के लिये स्वल्प समय में जो ठोस कार्य किया इससे वे गद्गद हो गये। यदा-कदा आकर यज्ञ-हवन करने का न्योता दिया।

दो उत्तम लेख- परोपकारी में दो उत्तम लेख पढ़ने को मिले। सम्पादकीय तो पठनीय विचारणीय होता ही है। राजवीर जी तथा प्रिय गुरप्रीत का लेख पढ़कर मन प्रसन्न हो गया। दोनों लेख खोजपूर्ण थे। एक-एक प्रमाण का पूरा अता-पता दे रखा था। जानकारी का स्रोत न देना साहित्यिक तस्करी ही तो है। इन दोनों नवोदित स्वाध्यायशील गवेषकों को उनके सत्प्रयास पर बधाई स्वीकार हो।

स्वामी सुधानन्द जी रेवाड़ी वालों ने चलभाष पर कुशलक्षेम पूछा। कुछ चर्चा भी चली। स्वामी जी आयु में मुझसे एक वर्ष ही छोटे हैं। अनुभव अच्छा है। हमने उन्हें

विश्व की पहली महिला माता लाडकुँवर को विश्व-इतिहास में आर्यसमाज रेवाड़ी की सन् १८८४-१८८५ में प्रधाना चुने जाने का प्रचार करने की प्रार्थना की। इस देवी से पहले महिला को वोट तक देने का अधिकार नहीं था। आपने कहा, ''मैं तो आपसे भी बहुत पहले से इस तथ्य का अपनी पुस्तक 'यादव-इतिहास' में प्रचार कर रहा हूँ।''

मैंने कहा, अच्छी बात है। उन्हें सम्भवत: पता ही नहीं कि हमने यह खोज कब की और इतिहास परिषद् द्वारा सम्मानित भी किये गये। स्वामीजी के ग्रन्थ के सन् २०१० के संस्करण में तो यह तथ्य, यह चर्चा हमें मिली नहीं। न जाने आपने यह कैसे कह दिया कि मैंने आपसे बहुत पहले यह खोज करके प्रचारित-प्रसारित कर दी। चलो! अच्छी बात है सत्य इतिहास का पूरी शक्ति से प्रचार-प्रसार होना ही चाहिये। जो भी ऐसा करे वह धन्य है। हम आर्यसमाज के गौरवपूर्ण प्रेरणाप्रद इतिहास की रक्षा करनेवालों को हृदय की गहरी गहराइयों से नमन करते हैं।

आर्य अध्यापकों का लुप्त हो रहा इतिहास- परोपकारी में आर्यसमाज के मिशनरी, समर्पित आर्य अध्यापकों पर हम निरन्तर सामग्री नहीं दे पाते, इसका हमें खेद है। आज आर्य संस्थायें आर्यसमाज के हाथ से निकल चुकी हैं। हम अनार्यकरण को नहीं रोक पाये। आज अति संक्षेप से कुछ ऐसे अध्यापकों प्राध्यापकों पर लिखना फिर से आरम्भ किया जाता है। आरम्भिक काल के मुनिवर दुर्गाप्रसाद जी, आचार्य रामदेव जी, मास्टर आत्माराम जी ने जीवन के अन्तिम श्वास तक ऋषि मिशन, देश व समाज की सेवा की। यह इतिहास बताने की क्या आवश्यकता है?

मास्टर नन्दलालजी डी.ए.वी. कॉलेज कमेटी के प्रधान रहे, फिर व्यापारी बने। उनके मुख से ही हम सुना करते थे कि वह शनिवार के दिन ग्रामों में प्रचार करने चले जाते थे और रविवार प्रात: जालन्धर अपने समाज के सत्संग में सम्मिलित हुआ करते थे।

लाला देवीचन्द जी प्रिंसिपल ने अपने पैसे से घोड़ी क्रय कर ली। छुट्टी होते ही दूर-दर तक ग्रामों में धर्मप्रचार, दलितोद्धार के लिये निकल जाते थे। जब विद्यार्थी थे तो मास्टर मुरलीधर जी से आर्यसमाज गुरदासपुर के सत्संग से पूर्व झाड़ू लगाना, दरियाँ बिछाना सीखा। इन्हीं मास्टर श्री मुरलीधर ने श्रद्धेय आत्माराम जी को आर्यसमाजी बनाया था। वर्तमान युग के प्राचार्य रमेशचन्द्र जी जीवन विद्यार्थी जीवन में आर्ययुवक समाज के दैनिक सत्संग से पहले दयानन्द जी, अमृत जी, डॉ. ऋषि कुमार जी आर्य के साथ समाज मन्दिर में झाड़ू लगाते और दरियाँ बिछाते रहे। आर्य मन्दिर की धुलाई भी किया करते थे। डी.ए.वी. के संचालकों को आज क्या पता कि समाज-सेवा क्या है? और इसका आनन्द क्या है? प्रिंसिपल यशपाल जी करनाल ९३ वर्ष के हो गये। वर्तमान में देश, धर्म की सेवा व रक्षा के लिये जितनी बार आप जेल में गये ऐसा दूसरा आर्य कौन है? विद्यार्थी जीवन में देशहित में फाँसी की कोठरी में रहने का गौरव प्राप्त किया। हिन्दी रक्षा सत्याग्रह में भूख हड़ताल करके सत्याग्रहियों की माँगें मनवाईं।

वर्तमान काल के डॉ. अशोक आर्य जी विद्यार्थीकाल में मेरे साथ दूर-दूर ग्रामों में प्रचारार्थ जाते रहे। देश भर में कई प्रदेशों में मेरे संग प्रचारार्थ जाते रहे हैं। जब विद्यार्थी थे स्वामी सत्यप्रकाश जी की संन्यास-दीक्षा के साक्षी बने। दलितोद्धार धर्मप्रचार के लिये दरियाँ बिछाने का इन्हें भी गौरव प्राप्त है।

श्री डॉ. धर्मवीर जी ने अजमेर में डी.ए.वी. कॉलेज में सेवा करते हुये ऋषि-मिशन की सेवा का कोई अवसर छोड़ा ही नहीं। हमने अपनी आँखों से देखा है कि ऋषि उद्यान की सफ़ाई की कोई व्यवस्था नहीं थी। यात्रियों के निवास व चाय तक का कोई प्रबन्ध नहीं था। खुरपा लेकर ऋषि उद्यान की घास और झाड़-झंखाड़ की कटाई-सफ़ाई में जुट गये। श्री ओम्मुनि ब्यावर से आकर इनके साथ इस सेवा-यज्ञ में जुट गये। वह सरकारी स्कूल के अध्यापक थे। खुरपे सभा के धन से क्रय किये या स्वयं खरीदे, यह मुझे पता नहीं।

१. द्रष्टव्य 'आत्मकथा महात्मा नारायण स्वामी जी' पृष्ठ ३२६-३२८।

२. द्रष्टव्य वही पृ. ३२८।

३. द्रष्टव्य 'आर्यसमाज के महाधन' लेखक स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, पृ. २८६।

ऐतिहासिक कलम से....

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम
आवश्यकता और कर्त्तव्य
(सत्यार्थ प्रकाश के पञ्चम समुल्लास के आधार पर) - ५

स्वामी अखिलानन्द सरस्वती

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनमें यह पञ्चम लेख 'वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम-आवश्यकता और कर्त्तव्य' आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वामी अखिलानन्द सरस्वती द्वारा लिखा गया है। -सम्पादक

प्राणी इस अथवा उस जगत् में अपनी इच्छा से नहीं आया; परन्तु अपने कर्मानुसार आया। अपनी व्यवस्था से नहीं आया दूसरी सत्ता के द्वारा आया, जो आने वाले से प्रबल है, शक्ति में भी और ज्ञान में भी। संसार में आने का जीवनोद्देश्य भी बतला दिया कि तुझको पूर्व कृत कर्मों के भोगों को भोगते हुए भविष्य के लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करना है, किस प्रकार करना है, उसके साधन भी बतला दिये और न केवल बतला दिये किन्तु वे समस्त साधन उत्पन्न करके जो जिस योग्य था, जैसे जिसके कर्म थे, उनके अनुसार उन-उन को दे भी दिये।

उस महान् शक्ति ने, जिसकी व्यवस्था से मनुष्य संसार में आया, बतला दिया कि हे मनुष्य! इस संसार में जितने साधन उपलब्ध हैं, तू इनका उचित प्रयोग कर और इन साधनों से आगे बढ़ने का प्रयत्न कर। यदि साधनों की कमी के कारण तुझे अपने उद्देश्य की प्राप्ति में कुछ कमी रहेगी तो पुनः तुम्हें उत्तम साधनों से परिपूर्ण किया जाएगा। यहाँ तक कि अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सब दुःखों से बचकर मोक्ष को प्राप्त कर सकेगा।

व्यवस्थापक प्रभु ने यह भी आदेश दिया कि साधनों का प्रयोग, प्रयोग करने की योग्यता प्राप्त करके ही करना चाहिये ताकि उनके प्रयोगों में भूल न हो सके और उनके प्रयोग से पूरा लाभ उठाया जा सके, इसलिये ऐ मनुष्य! तू सर्वप्रथम अपने को बलवान् बना, शारीरिक उन्नति के साधनों का प्रयोग कर। उत्तम गुरुओं द्वारा अपनी आत्मा को प्रभु के ज्ञान तथा ऋषियों द्वारा संग्रहीत रस का पान कर बलवान् बना। अपनी इन्द्रियों को विषयों से पृथक् रख, जिससे यह इन्द्रियाँ बलवान् बनकर पवित्र भी रह सकें और आज्ञापालन करती हुई तुझे सीधे मार्ग से विचलित न करें। जीवन का एक चौथाई भाग तुझे इस प्रकार व्यतीत करना है मानो संसार में तेरे लिये सिवाय गुरु और परमगुरु प्रभु के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। तेरा सत्संग केवल तुझ जैसे ही जीवन के प्रथम भाग के यात्री से हो या उन पुस्तकों से हो जो शारीरिक व आत्मिक उन्नति के साधन हैं। इस जीवन के भाग में मनुष्य विशेषरूपेण जीवन के उद्देश्य के प्रथम भाग को प्राप्त कर अगले-अगले अन्य भागों की प्राप्ति के साधन जुटाने की चिन्ता में लगता है अर्थात् अर्थ और काम की ओर झुकता है। जहाँ अपने जीवन के सम्बन्ध को जो अब तक एकता की रीति में स्वयं को चलाने में लगता रहा, अन्यों के साथ जोड़ता है और गृहस्थी बनता है। अपने गृहस्थ के भार को उठाने के योग्य बनकर उस भार को प्रसन्नता से लेता है। जनसाधारण के सम्पर्क में आकर अपने अनुकूल साधन द्वारा धर्म के

साथ जिसका अभ्यास जीवन के प्रथम भाग में किया है, अर्थ-प्राप्ति में लगकर राष्ट्र के लिये उत्तम सन्तान पैदा करने का भी यत्न करता है। जीवन के इस भाग में अपने परिवार की चिन्ता के साथ-साथ अपने देश की भी चिन्ता करता है। देशवासियों के सम्पर्क में आकर देशवासियों के दु:खों को मिटाने का साधन बनता है और दूसरों के लिये सुख के साधनों को जुटाता है। दु:ख दूर करने के लिये संसार से अविद्या के नाश का बीड़ा उठाता है। विद्या के प्रसार व प्रचार के कार्य को जीवन का एकमात्र मुख्य कार्य बनाता है या संसार में अन्याय से होने वाले दु:खों को मिटाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर शारीरिक बल से जनता को और राष्ट्र को सहायता देता है। यदि उपर्युक्त दोनों साधन अपने अनुकूल नहीं पड़ते हैं तो तीसरे प्रकार से उत्पन्न होने वाले दु:ख-अभाव को मिटाने का प्रयास करता है। संसार में अपनी रुचि व शक्ति के अनुसार उन वस्तुओं को उत्पन्न करने में जीवन को लगाता है, जिनसे संसार का दु:ख दूर हो और जनता का कल्याण होकर राष्ट्र को बल मिले। यदि यह भी न हो सके तब अन्त में जनसाधारण की अपने शरीर से सेवा करना अपना ध्येय बनाकर जीव-यात्रा के दूसरे मार्ग का यात्री बनता है और संसार की सेवा कर अर्थ और काम अर्थात् धर्म के साथ अर्थ-उपार्जन कर, धर्म के साथ उसका भोग कर जीवन को सफल बनाता है। संसार में सुख-वृद्धि में सहायक होता है। जीवन का यही दूसरा भाग जीवन का मुख्य भाग है यदि यह न हो तो अन्य नहीं हो सकें। यही भाग समस्त जीवन का आश्रयभूत है।

वानप्रस्थ का समय और उसके कर्त्तव्य

ईश्वरीय नियमानुसार जीवन का अर्द्ध भाग समाप्त होने के पश्चात् मनुष्य का शरीर कुछ विश्राम चाहता है। संसार के झंझटों से पृथक् होकर जीवन के तीसरे भाग को इस प्रकार बिताना चाहता है कि जिससे शारीरिक परिश्रम कम हो और जनता का लाभ अधिक हो। उस ही जनता के लाभ के साथ अपना लाभ भी निहित है। अब तक आत्मा अपने स्थूल शरीर से काम अधिक करती रही और सूक्ष्म से कम। स्थूल शरीर कार्य की अधिकता से थक जाता है, दुर्बल भी हो जाता है। मनुष्य बुढ़ापे की ओर झुक जाता है। शरीर की खाल मांस को छोड़ने लगती है। अत: अब मनुष्य जीवन के तीसरे भाग में पदार्पण करता है ताकि गृहस्थ से सम्बन्ध कम हो और अपने उत्पन्न करने वाले प्रभु की ओर ध्यान लगे। इस हेतु घरों की चारदीवारियों से पृथक् होकर वनों में जाकर वास करता है। अपना सत्संग अपने ऋषि-मुनियों से यदि साक्षात् सम्भव नहीं होता है तो पुस्तकों द्वारा रखता है और बहुधा दोनों ही रखता है ताकि जीवन के प्रथम भाग में जितना ज्ञान प्राप्त किया था उसको पुन: दोहरा ले और आगे को भी बढ़ा दे। गृहस्थ में रहकर जो लगाव संसार से तथा सांसारिक वस्तुओं और व्यक्तियों से हो गया था। उसको कम करते-करते त्याग दे। अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर वैरागी बन कर वनवासी बने। अपनी पत्नी को यदि वह चाहे तो साथ रख सकता है, परन्तु वह केवल साथ ही रहे किसी प्रकार की भोगवासना समीप न आवे। दोनों जितेन्द्रिय रहें, राग और द्वेष पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सत्पथगामी बनें और सत्यव्रती बनें। अहिंसा आदि यमों और शौचादि नियमों का पालन करते हुए आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान की ओर गति निरन्तर बनी रहे। नित्य यज्ञ में कभी अवहेलना न हो। भोजनादि के लिये नाना प्रकार के सामा आदि अन्न उत्तम प्रकार के शाक-मूल-फल-कन्दादि से जिस प्रकार पूर्व से करता चला आया है, वैसा करे। पंच महायज्ञ निरन्तर करता रहे और जो आहार अपने जीवन के लिये प्राप्त हो वही अपने लिये उपयोगी समझे। जिस प्रकार अन्य इन्द्रियों के विषयों का त्याग किया उसी प्रकार जिह्वा के विषय स्वाद का भी पूर्ण परित्याग करें, यदि कोई सौभाग्य से अतिथि आ जावे तो उसकी भी सेवा उन ही पदार्थों से श्रद्धापूर्वक करे। संसार के मनुष्यों से घनिष्ठता कम करते हुए सबका मित्र रहे। अधिकारी को विद्यादि का दान निरन्तर करता रहे। इसमें कंजूसी न करे। किसी से भी न लेकर इन्द्रियों का दमन सर्वदा सर्वथा करता रहे। शरीर के सुख के लिये अधिक प्रयत्नशील न बने। ब्रह्मचारी की भाँति कठिनाइयों को सहन करने वाला बना रहे। भूमि पर सोवे, अपने पास अधिक वस्तुएँ न रखे, जितना हो उनसे भी ममता न करे और वृक्ष की जड़ में बसे। इस प्रकार जीवन व्यतीत करने पर मनुष्य शान्त और विद्वान्

बन जाता है। वन में रहकर तपस्वी बन धर्म और सत्य का प्रेमी बन जाता है। भिक्षा माँगकर भोजन करता है। समय का सदुपयोग होता है और परमपिता परमात्मा में ध्यान लगा प्राणद्वार से उस परमात्मा को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयत्न करता है।

इस प्रकार अविनाशी परमात्मा की उपासना से आनन्द की प्राप्ति चाहनेवाला बने। उचित है कि वह दीक्षित होकर तीसरे आश्रम वानप्रस्थ को धारण कर वनवासी बने और वन में रहकर नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास, ज्ञान और विचारों की पवित्रता को प्राप्त करता हुआ अपने को इस योग्य बना ले कि जीवन के चतुर्थ आश्रम में प्रवेश पाकर संन्यास आश्रम में प्रवेश होने से पूर्व स्त्री को पुत्र के पास छोड़ आवे।

संन्यास-प्रवेश

मनुष्य संन्यास-आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व यह भली प्रकार देख ले कि उसके त्याग और वैराग्य में कोई न्यूनता तो नहीं है। ऐसा कदापि न होना चाहिये कि अधूरा मन हो। जीवन का चौथा भाग ७५ वर्ष बीत जाने पर ७६वें वर्ष से आरम्भ होता है। जबकि उसका भोगों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, सबका त्याग आवश्यक है। इस प्रकार संन्यास-आश्रम में प्रवेश ठीक है। प्रथम तो यह कि गृहस्थ से ही संन्यास ले ले वानप्रस्थ में न जावे, दूसरा विकल्प यह है कि गृहस्थ भी न करे, ब्रह्मचर्य से ही संन्यास आश्रम में प्रवेश करे। ये दोनों विकल्प धर्मानुकूल हैं। जब मनुष्य को पूर्ण वैराग्य हो जावे, तब वह गृहस्थ से सीधा संन्यासी हो सकता है। वानप्रस्थ तो बीच में है ही। इस कारण कि वानप्रस्थाश्रम में त्याग और वैराग्य की भावना को उत्पन्न करे और गृहस्थ जिसको २५ वर्ष तक भोगा है, से जो राग है छूट जावे और वानप्रस्थ में पूर्ण वैराग्य प्राप्त करे। परन्तु जब गृहस्थ में ही वैराग्य प्राप्त हो गया तो वानप्रस्थ की आवश्यकता न रही तब सीधा संन्यास आश्रम को प्राप्त कर लेवे, ऐसी आज्ञा धर्म की है। इसी प्रकार जो पूर्ण विद्वान्, पूर्ण ब्रह्मचारी है, जिसको विषय-भोग की कामना नहीं, जितेन्द्रिय है और परोपकार की भावना से परिपूर्ण है, वह ब्रह्मचर्य से ही सीधा बिना गृहस्थ में प्रवेश किये ही संन्यास-आश्रम में प्रविष्ट हो सकता है। कठोपनिषद् के वल्ली मन्त्र ३३ में वर्णन है-

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिसकी आत्मा योगी नहीं, और जिसका मन शान्त नहीं है। वह संन्यास लेके भी अज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता। इसलिये यह सत्य है कि ब्रह्मचर्य से सीधा संन्यास लेना कठिन है। काम को रोकना सुगम नहीं है, परन्तु सम्भव है, असम्भव नहीं। संसार में अब भी और पूर्व इतिहास में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि विद्वानों ने सीधे संन्यास लिया है। हाँ, जो निर्वाह न कर सके, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त न कर सके, वह ब्रह्मचर्य से संन्यास न लेवे, परन्तु जो निर्वाह कर सकता है, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुए है, जिसकी धारणा परोपकार में दृढ़ है। जो अपनी प्रतिज्ञा में चट्टान के समान अडिग है, वह क्यों न ले? जिस ब्रह्मचारी ने विषयों के दोषों को जान लिया है, जिसने वीर्य-रक्षा के गुण जाने हैं। वह विषय-आसक्त कभी न होगा और उसका वीर्य विचाराग्नि में ईंधनवत् काम करता है। औषध की आवश्यकता रोगी को होती है। जो कामरोगी नहीं है, वह विवाह की औषध क्यों खाएगा? जिसको परोपकार करना है, वह गृहस्थ के झंझटों में न फँसकर सीधा संन्यास में ही जाना पसन्द करेगा।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेद् ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।।
कठ. १.३.१३।।

संन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोक कर उनको ज्ञान और आत्मा में लगावे और उस ज्ञान स्वात्मा को परमात्मा में लगावे और उस विज्ञान को शान्तस्वरूप आत्मा में स्थिर करे और भी देखें-मुण्डक उपनिषद् (१.१.१२) में लिखा है-

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।

सब लौकिक भोगों को कर्म से संचित हुए देखकर ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी वैराग्य को प्राप्त होवे क्योंकि अकृत

अर्थात् न किया हुआ परमात्मकृत अर्थात् केवल कर्म से प्राप्त नहीं होता। इसलिये कुछ अर्पण के अर्थ कुछ हाथ में लेके वेदवित् और परमात्मा जानने वाले गुरु के पास विज्ञान के लिए जावे। जाकर सब सन्देहों की निवृत्ति करे, परन्तु ऐसे गुरुओं के पास न जावे जो दुर्बुद्धि हों, अविद्या में फँसे हुए होने के बावजूद अपने को विद्वान् समझते हैं। ऐसों के पास जाकर मनुष्य दु:खों में फँसता है और ईश्वर को कभी नहीं पा सकता। इसलिए संन्यासी ईश्वर के दिये ज्ञान वेदों के अर्थ ज्ञान और आचार में भले प्रकार निपुण, दम्भरहित, शुद्ध अन्त:करण वाले परोपकारी संन्यासी के पास जाकर ही मुक्ति-प्राप्ति के साधनों को प्राप्त कर मुक्त होने का प्रयास करे। क्योंकि बिना मुक्ति के दु:ख का नाश सम्भव नहीं। मुण्डक खं. २ मं. ६ में भी ऐसा वर्णन है कि जो देहधारी है वह सुख-दु:ख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं होता और शरीररहित जीवात्मा मुक्ति में सर्वव्यापक परमेश्वर को शुद्ध होकर प्राप्त करता है। उसको सांसारिक सुख-दु:ख प्राप्त नहीं होता। इसलिए शतपथ का. १४ के कं १ के अनुसार लोक में प्रतिष्ठा वा लाभ, धन से भोग व मान, प्रजादि के मोह से पृथक् होकर भिक्षुक बनकर रात-दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहे।

यजुर्वेद के ब्राह्मण में भी लिखा है-

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मण: प्रव्रजेत्।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मण: प्रव्रजेद् गृहात् ॥

अर्थात् प्रजापति परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्ट अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीत शिखा आदि चिह्नों को छोड़ आहवनीयादि पंच अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन ५ प्राणों में आरोपण करके ब्राह्मण घर से निकल कर संन्यासी हो जावे। इसी प्रकार मनु जी भी कहते हैं कि ''जो सब भूत प्राणी मात्र को अभयदान देकर घर से निकल कर संन्यासी होता है, उस ब्रह्मवादी अर्थात परमेश्वर प्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याओं के उपदेश करने वाले संन्यासी के लिए प्रकाशमय अर्थात् मुक्ति का आनन्दस्वरूप लोक प्राप्त होता है।''

संन्यासी का धर्म

संन्यासी का धर्म है कि वह पक्षपातरहित न्याय-आचरण, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा का पालन, परोपकार, सत्यभाषणादि कार्यों में तत्पर रहे, परन्तु इसके अतिरिक्त जब चले तो नीची दृष्टि रखकर इधर-उधर न देखकर चले, वस्त्र से छानकर पानी पीवे। किसी पर क्रोध न करे अपनी निन्दा सुनकर भी, सदा भलाई का उपदेश करे। सत्य बोले, असत्य कभी न बोले, मांस-मदिरा का कभी सेवन न करे, धर्म-उपदेश और विद्या पढ़ाता रहे।

केश, नख, दाढ़ी, मूँछ का छेदन कराता रहे, दण्ड और कुसुम के रंगे वस्त्रों को ग्रहण करके निश्चितात्मा से विचरे, किसी को पीड़ा न दे। यह भी निश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डल, काषाय वस्त्र आदि चिह्न धर्म का कारण नहीं हैं। संन्यासी सप्तव्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो उतने करे, परन्तु उससे न्यून न करे, यही संन्यासी का परमतप है। जैसे अग्नि धातु के दोष को दूर करती है, वैसे ही संन्यासी का तप दोषों को दूर करता है। इसीलिये संन्यासी नित्य प्राणायाम से आत्मा, इन्द्रिय और अन्त:करण के दोषों को दूर किया करे और धारणा से पाप, प्रत्याहार से संगदोष, ध्यान से हर्ष, शोक और विद्या के अवगुणों का नाश करे।

संन्यासी धर्म के लक्षण जो निम्नलिखित हैं, पूर्णरूपेण जीवन में सेवन करते रहें-धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध इन दस लक्षणों पर अन्यों को चलाना भी संन्यासी का धर्म है।

संन्यासी कौन बने?

एक प्रश्न है कि संन्यासी प्रत्येक व्यक्ति हो सकता है या कोई विशेष व्यक्ति ही संन्यास ले सकता है? समाधान इस प्रकार है, प्रत्येक संन्यासी हो सकता है, यदि उसने संन्यास लेने की योग्यता प्राप्त कर ली है। यदि संन्यासी बनने की योग्यता प्राप्त नहीं की है तो नहीं बन सकता। जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति आचार्य बन सकता है, परन्तु आचार्य बनने के लिए प्रथम शास्त्री बनना आवश्यक है। अत: कहा यही जावेगा कि आचार्य शास्त्री ही बन सकता है, जो शास्त्री नहीं है, वह नहीं बन सकता। इसी प्रकार यत: संन्यासी बनने के लिए ब्राह्मण बनना आवश्यक है।

अत: कहा जायेगा कि ब्राह्मण ही संन्यासी बन सकता है। ब्राह्मण प्रत्येक मनुष्य बन सकता है। जो व्यक्ति ब्राह्मण के गुण, कर्म, स्वभाव अपने बना लेगा, वही संन्यासी हो सकता है। जन्म का ब्राह्मण यदि ब्राह्मण के गुण, कर्म, स्वभाव नहीं रखता, तो वह भी संन्यासी न बनेगा। मनु जी महाराज की भी ऐसी ही सम्मति है।

क्या संन्यास आवश्यक है?

प्रश्न है कि क्या संन्यास लेना मनुष्य के लिए आवश्यक है? उत्तर है कि आवश्यक है। कुछ जो व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि आवश्यक नहीं, वे ठीक नहीं कहते। जिस प्रकार देश और जाति को अपने जीवन-रक्षाार्थ वैश्य और क्षत्रिय की आवश्यकता है, इसी प्रकार संन्यासी की भी आवश्यकता है। बिना क्षत्रिय के देश की रक्षा सम्भव नहीं, बिना वैश्य के कृषि आदि का काम सम्भव नहीं। इसी प्रकार धर्म के और विद्या के प्रचार तथा प्रसार के लिए संन्यासी की आवश्यकता है। देश को यदि अन्न की आवश्यकता है, तो देश को धर्म और विद्या की भी उससे कम आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार अन्न उत्पन्न करने के लिए वैश्य की आवश्यकता है, इसी प्रकार देश को उलटे मार्गों पर जाने से रोकने और धर्मानुकूल कार्य करने की शिक्षा देने के लिए संन्यासी की आवश्यकता है। संन्यासियों के देश में न होने से ही देश की दुर्गति है। हाँ, यह ठीक है कि संन्यासी संन्यासी ही होना चाहिए। जो काम संन्यासी कर सकता है, वह काम गृहस्थी नहीं कर सकता, उसके पास इतना समय नहीं। संन्यासी को अपना कोई काम नहीं, परोपकार करना ही उसका काम है। दो गृहस्थी यदि परस्पर लड़ने लग जावें तो कितनी बड़ी हानि होती है। संन्यासी उनको अपने उपदेश से लड़ने से बचा सकता है। यह कहना भी किसी-किसी का मिथ्या है कि संन्यासी बन जाने से सृष्टि की हानि होगी, क्योंकि जब संन्यासी विवाह नहीं करेगा तो सन्तान कहाँ से आवेगी। यह ठीक विचार नहीं, क्योंकि संन्यास तो गृहस्थ आश्रम के पश्चात् ही होता है। ब्रह्मचर्य से सीधा संन्यास लेने वालों की संख्या तो अत्यन्त न्यून होगी। अत: यह कल्पना करना कि सृष्टि की हानि होगी, मिथ्या ही है। दूसरे यह कि अनेक गृहस्थियों के विवाह कर लेने पर भी सन्तान नहीं होती तो विवाह से लाभ न हुआ।

किन्हीं-किन्हीं का कहना है कि संन्यास लेने के पश्चात् संन्यासी के कुछ कर्त्तव्य नहीं, समस्त संसार मिथ्या है, सब ब्रह्म है इत्यादि। परन्तु, यह कहने वाले कि 'सब मिथ्या है', में स्वयं भी आ जाते हैं और वो भी मिथ्या ही बन जाते हैं। जो कहता है कि संन्यासी का कुछ कर्त्तव्य नहीं, यह भी ठीक नहीं। संन्यासी का भोजन आदि कर्म नहीं छूट जाता है तो शुभ कर्म जो दूसरों को सत्योपदेश करना है, वह भी नहीं छूट सकता। संन्यासी का यह परम कर्त्तव्य है कि संसार को सीधे मार्ग पर चलावे, सबका उपकार करे।

लोगों की यह कल्पना भी है कि संन्यासी अग्नि तथा धातु को हाथ न लगावे। उपदेश करना गृहस्थियों का काम है, संन्यासी का नहीं। संन्यासी को इन झंझटों में नहीं पड़ना चाहिए। संन्यासी कहीं अधिक न ठहरे, अधिक से अधिक ३ रात्रि ठहरे, इससे अधिक कहीं न ठहरे और किसी को उससे स्वर्ण ग्रहण कर नरकगामी न बनावे इत्यादि अनेक बातें हैं जो संन्यासी का कर्त्तव्य नहीं है।

जो लोग ऐसा कहते हैं वह सत्य नहीं है, स्वार्थी लोगों की अपनी दूषित मनोवृत्ति की कल्पनाएँ हैं। जरा विचारिये कि जब किसी व्यक्ति ने संसार को त्यागा ही इसलिये है कि वह स्वार्थ छोड़कर संसार का उपकार करेगा तो यह किस प्रकार सम्भव है कि संन्यासी संसार की समस्त वस्तुएँ त्याग देगा। शरीर को स्थिर व स्वस्थ रखने हेतु संसार की उन वस्तुओं से सम्पर्क रखना आवश्यक है, जिनसे शरीर रह सके, ताकि जनता का उपकार करने में कोई बाधा न आवे। इसमें चाहे धातु हो या काष्ठ हो। संन्यासी के पास समय अधिक होता है, गृहस्थी के पास समय नहीं होता। अत: जितना प्रचार गृहस्थी कर सके उतना वह करे, परन्तु संन्यासी अधिक कर सकता है, उसको प्रचार न करना चाहिये यह बिल्कुल गलत है। संन्यासी संसार का जितना उपकार कर सकता है, उतना कोई नहीं कर सकता। संन्यास आश्रम में न केवल पुरुष ही प्रवेश लें, अपितु स्त्रियाँ भी उसमें प्रवेश लें और स्त्रियाँ स्त्रियों में काम करें, अर्थात् स्त्रियों को धर्म का उपदेश करें। संन्यासी को भ्रमण का अवकाश अधिक है।

उनका कार्य भ्रमण करते हुए अधिक हो सकता है। यह ठीक है कि एक स्थान पर अधिक न ठहरे, परन्तु इससे प्रचार-कार्य अधिक नहीं हो सकता। पूर्वकाल में संन्यासी एक राज्य में एक स्थान पर ४-४ माह तक भी रहा करते थे। अत: आवश्यकतानुसार अधिक भी रहे।

देश का कल्याण किसमें है, यह संन्यासी अधिक जानता है और उसी के अनुसार करता भी है। यह कहना कि संन्यासी के पास कोई धातु न हो, सोना, चाँदी न हो, यह देश व जाति के हित की बात नहीं। यदि संन्यासी के पास उसकी आवश्यकता की समस्त वस्तुएँ होंगी तो वह किसी के आधीन भी न रहेगा और प्रत्येक की समालोचना निर्भीक होकर करेगा। संन्यासी की अधिक से अधिक सेवा करनी चाहिए और ऐसे संन्यासी की जो अपने जीवन को उपकार में लगाता हो। हाँ, यह सत्य है कि संन्यासी अपने पास अधिक न रखे।

किसी-किसी का कहना है कि श्राद्ध में संन्यासी न आवे, अन्यथा पितर भाग जाते हैं। यह बात भी नितान्त गलत और भ्रमोत्पादक है। मृत पितर कभी आते ही नहीं, न ही कुछ दिया हुआ उनको पहुँचता है। श्राद्ध तो संन्यासियों का किया जाता है। संन्यासी श्राद्ध में से भगा दिये जायें या उनका आना निषिद्ध है, यह तो बिल्कुल ही अनोखी बात है। पितर तो हमारे संन्यासी, माता-पिता और देश के विद्वान् ही हैं और जिनको पितर आप मानते हैं वह तो मरकर पुन: जन्म पाते हैं, कहाँ जाते हैं, यह न आप जानें न हम। तब आपकी भेजी वस्तु किस प्रकार वहाँ जा सकती है।

संन्यासियों में ऐसे साधु जो केवल पेट के पुजारी हैं, जो वैरागी, गुसाईं, खाकी आदि हैं; उनको संन्यासी नहीं गिनना चाहिए। क्योंकि इनसे देश का कोई लाभ नहीं होता। ये सब स्वार्थी हैं। अपने प्रपंच में जनता को फँसाने वाले हैं, परन्तु जो संन्यासी जनसमूह के हितैषी हैं, सबका कल्याण करने में सर्वदा तत्पर रहते हैं और लोक तथा परलोक का ज्ञान देकर उनको मोक्ष का अधिकारी बनाते हैं, वे पूजनीय और श्रद्धा के पात्र हैं।

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानु:	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

मेरे पिता ! मेरे आदर्श !
(श्री गजानन्द आर्य)

महेन्द्र आर्य

हर पुत्र या पुत्री को अपने माता और पिता से प्यार होता है। क्यों न हो? माता अपनी सन्तान को गर्भ में धारण करके नौ महीनों तक असह्य कष्ट को झेलते हुए भी मुस्कुरा कर अपनी सन्तान को जन्म देती है और वहीं से शुरू हो जाता है- पिता का दायित्व! मेरे जीवन में मेरे पिता का स्थान ईश्वर के समान है। जहाँ माँ से भरपूर प्यार की ऊष्मा मिली; वहीं पिताजी से जीवन के हर कदम पर संस्कार, अनुशासन, कर्त्तव्यबोध, शिक्षा और सामाजिकता का प्रसाद मिलता रहा।

जीवन के प्रारम्भिक पाँच वर्ष मैंने बिताये अपने गाँव शेरडा में, अपने दादाजी स्वर्गीय लालमन आर्य की गोद में; जबकि माँ और पिताजी कलकत्ता शहर में रहते थे। कलकत्ता में पिताजी हमारा कपड़े का थोक का व्यापार सँभालते थे। मेरे गाँव में रहने के पीछे कारण था, मेरी परदादी का मेरे प्रति अपरिमित स्नेह। क्या आज के युग में कोई माता-पिता अपने बुजुर्गों का मन रखने के लिए अपने हृदय के अंश को अपने आप से दूर गाँव में छोड़ सकते हैं?

जब कलकत्ता आया, तब शिक्षा प्रारम्भ हुयी। बचपन से पिताजी ने आर्यसमाज की शिक्षा का प्रबन्ध किया। यूँ तो प्रतिदिन पिताजी हमें महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के बारे में बताते रहते थे; फिर भी उन्होंने कलकत्ता के एक वरिष्ठ बंगाली विद्वान् पण्डित प्रियदर्शन शास्त्रीजी को प्रति रविवार की सुबह नियुक्त किया। पण्डित जी हम तीनों भाई-बहनों को सन्ध्या, हवन तथा स्वाध्याय की शिक्षा देते थे।

जब हम भाई-बहन बड़ी कक्षाओं में पहुँचे, तो पिताजी हमारे लिए आर्यसमाज का बाल साहित्य लाते रहे। हमें आर्यसमाज कलकत्ता और बड़ा बाजार के वार्षिकोत्सव में ले जाते। पण्डित उमाकान्त उपाध्याय हमें आर्यसमाज के दर्शन की शिक्षा देने घर पर आते। भजनोपदेशक पण्डित रामरीझन शर्मा बहन सविता को संगीत और भजन गाने की शिक्षा देने आते; मैंने साथ बैठकर संगीत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त किया। पिताजी के साथ हमें आर्यसमाज के विद्वानों का सान्निध्य हमेशा मिलता रहा। पिताजी आर्यसमाज के अधिकारी पदों पर रहे। वार्षिकोत्सव पर बाहर से आने वाले विद्वान् प्राय: हमारे घर पर ठहरते थे। माताजी बड़े आदर और सम्मान से उनकी देखभाल करती थीं। मैं जिन महानुभावों का लम्बा सम्पर्क पिताजी की कृपा से पा सका उनमें से कुछ नाम याद हैं- मथुरा के श्री ईश्वरीप्रसाद 'प्रेम', दिल्ली की विदुषी बहन प्रेमशील महेन्द्रू, हरिद्वार के वैद्य श्री योगेंद्रपाल शास्त्री, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, स्वामी सत्यपति, श्री रामगोपाल शालवाले, श्री बलराज मधोक, आचार्य यशपाल सुधांशु आदि। लेकिन जो व्यक्ति पूरी तरह परिवार का हिस्सा बन गए वो थे आचार्य धर्मवीर और श्री ओमप्रकाश झँवर। यदा-कदा मेरी अजमेर यात्राओं में उनके परोपकारिणी सभा के परिवार से मिलने और जुड़ने का मौका मिलता रहा। सभी लोगों से एक विस्तृत परिवार का प्रेम मिलने लगा। आचार्य सत्यजित्, सुभाष जी नवाल, बहन ज्योत्स्ना जी, गर्ग जी आदि से घनिष्ठता बढ़ी। कलकत्ता से चुने हुए श्री दीनदयाल जी तो पिताजी को हमेशा अपना बड़ा भाई मानते रहे। श्री शत्रुघ्न गुप्ता हमारे परिवार से ही हैं।

जब मेरा दाखिला राँची स्थित इंजीनियरिंग कॉलेज बीआईटी में हो गया, तो राँची जाने के समय पिताजी ने मुझे एक शिक्षा दी। उन्होंने कहा- महेन्द्र! मुझे विश्वास है कि तुम एक बहुत अच्छे इंजीनियर बनकर आओगे, लेकिन ध्यान रखना वहाँ के हॉस्टल में किसी बुरी संगत में मत पड़ जाना। ये साधारण सी लगने वाली बात मन में बहुत गहरे तक पैठ गयी। हॉस्टल के जीवन में सब किस्म के साथी मिलते हैं। मांसाहार, शराब के अलावा बहुत प्रकार के नशे के साधन उपलब्ध होते हैं। पिताजी का वो एक वाक्य मेरे चारों तरफ एक लक्ष्मण रेखा का काम करता रहा।

१९८२ में दादाजी श्री लालमन आर्य की मृत्यु हो

गयी। दादाजी से बचपन ही जुड़ा हुआ था। गाँव के मेरे साथ प्रवास की अनेकों स्मृतियाँ थी। मैंने पिताजी से इच्छा व्यक्त की- मुझे दादाजी के विषय में एक स्मृति-ग्रन्थ तैयार करना है। उन्हें मेरा प्रस्ताव बहुत पसन्द आया। कुछ महीनों की मेहनत के बाद तैयार हो गयी हमारी पुस्तक- '**यादें**'। उसके बाद मैं पिताजी के लेखन और चिन्तन का नियमित साथी बन गया। पिताजी कुछ भी लिखते या सोचते तो मेरे साथ विमर्श करते। अपने जीवन-काल में उन्होंने कितने ही लेख और पुस्तकें लिखीं। उनका चिन्तन हमेशा लकीर से हटकर एक अलग ही दिशा में होता था। उनका शोधग्रन्थ **वीरांगना महारानी कैकेयी** एक अनूठा ग्रन्थ है। उसका प्रकाशकीय लिखने का दायित्व उन्होंने मुझे दिया। उनकी एक और पुस्तक- **आर्यसमाज की मान्यतायें** पूरे आर्यजगत् में बहुत लोकप्रिय हुयी। बहुत सी संस्थाओं ने पिताजी से प्रकाशित करने के अधिकार लिये और बड़ी संख्या में प्रकाशित की। मेरे मन में आया कि इस पुस्तक की उपयोगिता अंग्रेजी भाषा में बहुत होगी, क्योंकि विदेशों में बसने वाले आर्यसमाजी परिवारों की नयी पीढ़ी हिन्दी पढ़ने में कुछ कम सक्षम है। वैसे भी यह पुस्तक आर्यसमाज के दायरे से बाहर भी बहुत प्रचलित है। जब मैंने पिताजी से चर्चा की तो उन्हें मेरी योजना बहुत पसन्द आयी। अनुवाद के कार्य में मैं यदा-कदा उनसे कुछ नये विषय जोड़ने की चर्चा करता; उनकी अनुमति और नये विषय पर उनके विचार मिलने के बाद मैंने उन विषयों को पुस्तक में जोड़ा। मुझे प्रसन्नता है कि ये अंग्रेजी पुस्तक भी देश और विदेशों में बहुत पसन्द की गयी। अब मेरे छोटे भाई नरेन्द्र ने इस पुस्तक का अनुवाद कन्नड़ भाषा में किसी विद्वान् द्वारा कराया है। पिताजी का अन्तिम प्रवास भाई नरेन्द्र के निवास पर बैंगलोर में था; नरेन्द्र के इस कार्य ने उन्हें अवश्य ही बहुत प्रसन्न किया।

बैंगलोर जाने के पहले पिताजी काफी समय तक मुम्बई में मेरे साथ थे। उनकी आँखें बहुत क्षीण हो गयी थीं और पढ़ना लिखना सम्भव नहीं रह गया था। कानों से सुनना भी बहुत कम हो गया था। उनका मस्तिष्क पूरी तरह सक्रिय था। मुझसे कहते थे- जीवन में दो ही काम मेरी रुचि के थे- पढ़ना और लिखना; अब ये दोनों बन्द हो गए हैं; मेरी और कोई उपयोगिता भी नहीं है- मुझे लगता है कि मेरे जीवन का कोई मतलब नहीं रह गया। मैंने उनसे कहा- जब तक आपका मस्तिष्क सक्रिय है, आप इस तरह की बात कैसे सोच सकते हैं? रही बात लिखने और पढ़ने की; वो हम दोनों मिल जुलकर कर सकते हैं। मैं उनकी रुचि के अनुसार कुछ पुस्तकें लाया। मैंने उन्हें रोज १५-२० मिनट किताबों को पढ़कर सुनाना शुरू किया। उन्हें आनन्द आने लगा; उन्हें रोज इस सत्र की प्रतीक्षा रहने लगी। उनके लेखन का विकल्प मैंने कुछ ऐसे निकाला; मैं उनसे कहता आप अपने विषय पर मानसिक रूप से तैयारी कर लेवें। आप अपनी बात बोलना शुरू करें, मैं आपके साथ बैठकर लिखना शुरू करता हूँ। यह तरीका कारगर नहीं हुआ, क्योंकि मैं उनके सोचने और बोलने की गति से जुगलबंदी नहीं कर पा रहा था। मैंने दूसरा विकल्प निकाला। मेरे मोबाइल फोन में ध्वनि रेकॉर्ड करने की सुविधा थी। पूरी धाराप्रवाह बात उसमें रिकॉर्ड कर लेता। फिर मेरी सुविधानुसार उसे सुन-सुनकर मैं ढंग से लिख देता। सम्पादन की स्वतन्त्रता पिताजी ने मुझे हमेशा दे ही रखी थी। मेरी फाइनल रचना को उनको मैं पढ़कर सुनाता और वो जहाँ चाहते, वहाँ भेज देता।

जब उन्हें आचार्य धर्मवीर जी के निधन का समाचार मिला; वह बहुत ही उद्विग्न हो गए। उनकी यात्रा करने की अवस्था नहीं थी, इसलिये मैं अजमेर उनकी अन्त्येष्टि में शामिल होने के लिए गया। ऋषि मेले पर धर्मवीर जी के श्रद्धाञ्जलि कार्यक्रम के लिए वह बहुत कुछ लिखना चाहते थे। वे निरन्तर बोलते गये। असंख्य अनुभव और स्मृतियाँ उनके मस्तिष्क में हिलोरें लेती रहीं। मैंने उनकी अभिव्यक्ति को लिखकर उन्हें पढ़कर सुनाया; तो बोले- तुम अजमेर जाकर मेरी बातों को सुनाना। मैंने अजमेर की उस श्रद्धाञ्जलि सभा में पिताजी के मनोभाव पढ़कर सुनाये तो श्रोताओं की आँखों में आँसू आ गए। कुछ ऐसा दृश्य था मानो कोई पिता अपने दिवंगत पुत्र के विषय में कुछ कह रहा हो।

जीवन के कदम-कदम पर उनके जीवन से मुझे शिक्षा मिली। एक अच्छा पुत्र, एक अच्छा पति और एक अच्छा पिता कैसा होता है- उनका पूरा जीवन ही मेरे लिए

अनुसरणीय रहा। वे आर्यसमाज के विभिन्न पदों पर कार्यशील रहे- लेकिन हमेशा पद ने उनका पीछा किया, उन्होंने किसी पद की लालसा नहीं की। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित संस्था परोपकारिणी सभा में ट्रस्टी बन पाना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि होती है; लेकिन ऐसी संस्था में ३४ वर्षों तक निरन्तर मन्त्री और फिर प्रधान पद पर बनकर अपना पूरा सहयोग देना- एक स्वप्न जैसा लगता है। सबसे बड़ी बात ये है कि इतने समय उन्हें पद पर बिठा कर रखने का कारण उनकी इच्छा नहीं थी, बल्कि अन्य २२ ट्रस्टियों का आग्रह था। सामजिक संस्थाओं में काम करने की शिक्षा इससे बड़ी मुझे मिल नहीं सकती।

जीवन के हजारों संस्मरण मस्तिष्क में है। मन है कि उनके विषय में एक संस्मरण ग्रन्थ की रचना करूँ। परोपकारी पत्रिका से जुड़े सभी महानुभावों से अनुरोध है, आपके जीवन में पिताजी से जुड़ा कोई संस्मरण है तो मुझे लिख भेजें, मेरे पते पर या मेरी ईमेल पर। यथासम्भव उस ग्रन्थ में आपके संस्मरण को शामिल करूँगा।

आदर सहित!

सागर सुक्षिति, प्लाट-२, रोड-५, जे. वी. पी. डी. स्कीम, विले-पार्ले-पश्चिम; मुम्बई ४०००५६।
ईमेल- mahendraarya@gmail.com

आर्यजगत् के समाचार

१. प्रवेश प्रारम्भ- श्रीमद्दयानन्द आर्ष गुरुकुल खेड़ा खुर्द, दिल्ली में कक्षा छठी, सातवीं और आठवीं में प्रवेश प्रारम्भ है। शिक्षा, भोजन, आवास, दूध, वस्त्र, पुस्तक, कॉपी आदि का किसी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लिया जाता है। प्रवेश के इच्छुक व्यक्ति सम्पर्क करें। आचार्य सुधांशु८८००४४२६१८, ९८१११४२५२६

२. वार्षिकोत्सव- श्रीमद्दयानन्द आर्ष गुरुकुल खेड़ाखुर्द दिल्ली के ७५ वें वार्षिकोत्सव के शुभ अवसर पर यजुर्वेद पारायण यज्ञ, राष्ट्र-रक्षा व गोरक्षा सम्मेलन, रविवार, १५ मार्च, २०२० को आयोजित किया जा रहा है। सभी आर्यजन सपरिवार इष्टमित्रों के साथ आमन्त्रित हैं।

३. वार्षिकोत्सव सम्पन्न- ओड़िशा के पच्चीस जिलों व छत्तीसगढ़, झारखण्ड, राजस्थान, दिल्ली, पं. बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार आदि राज्यों से पधारे सहस्राधिक श्रद्धालु महानुभावों की पावन उपस्थिति में गुरुकुल हरिपुर के संचालक डॉ. सुदर्शनदेव आचार्य जी की देख-रेख में गुरुकुल हरिपुर जुनानी का त्रिदिवसीय दशम वार्षिक महोत्सव 'दिशा पर्व' २८, २९ व ३० दिसम्बर २०१९ को अनेक उपलब्धियों के साथ निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

४. ऋषि बोधोत्सव - प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी ऋषि बोधोत्सव का आयोजन २०, २१ व २२ फरवरी २०२० (गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार) को महर्षि दयानन्द जन्मस्थली टंकारा में आयोजित किया जा रहा है। आप सभी से प्रार्थना है कि आप इस कार्यक्रम में परिवार एवं मित्रों सहित अधिक से अधिक संख्या में पधारने की कृपा करें।

वैवाहिकी

५. वधू चाहिए- निष्ठावान् आर्य (जाट)परिवार के सुसंस्कारित २८ वर्षीय युवक के लिए आर्य परिवार की सुशिक्षित, संस्कारित वधु की आवश्यकता है। युवक का परिचय-जन्म- ३०.१०.१९९१ शिक्षा- एम.ए.(भूगोल), बी.एड., नेट(जे.आर.एफ.), एम.फिल.राजस्थान शिक्षा विभाग में प्रथम श्रेणी अध्यापक (विद्यालय व्याख्याता) उत्तम स्वास्थ्य लम्बाई- ५.८। आर्य विचारों व संस्कारों को प्राथमिकता। सम्पर्क सूत्र- ७५९७८९४९९१-९०७९०३९०८८।

६. वधू चाहिए- संस्कारी आर्य युवक, एम.बी.ए. ५ फुट ९ इंच, जुलाई १९८९, प्रतिष्ठित पारिवारिक व्यापार में संलग्न, फैक्ट्री निर्माणाधीन, एक्सपोर्ट यूनिट प्रस्तावित हेतु संस्कारी परिवार आमन्त्रित हैं। ८४७५०५२५४५, के.सी. सभरवाल, अलीगढ़।

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।
-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर विहङ्गम दृष्टि

डॉ. रामप्रकाश वर्णी डी.लिट्

(गताङ्क से आगे)

जैसा कि गताङ्क में लिखा जा चुका है कि परब्रह्म परमात्मा इस जगत् का केवल 'निमित्त-कारण' है। अभिन्ननिमित्तोपादान-कारण नहीं। इस जगत् का उपादान-कारण तो 'नित्य-प्रकृति' ही है जो कि नित्य, नूतन कार्य उत्पन्न करती ही रहती है। यह कमनीया कान्तिमयी प्रकृति नव्य-भव्य पदार्थों को जहाँ विशेष रूप से प्रकाशित करती है, वहीं यह गतिशील जीव-जगत् से जुड़कर अपने स्वरूप का कथन भी करती है। परिणामत: संसार के सभी लघु-गुरु रूप इसी प्रकृति के ही स्वीकार किये गये हैं, परब्रह्म परमात्मा के नहीं। फिर भी कुछ दुराग्रही-हठी लोग इस शाश्वतिक सत्य को स्वीकार नहीं करते हैं और वे जीवन भर स्वयं तो भटके रहते ही हैं, अनेक मन्दमति जनों को भी सदा भटकाते रहते हैं। उन्हीं के लिए ''**अन्धैनैव नीयमाना यथाऽन्धा:**'' यह शास्त्र प्रणीत हुआ है। वे कहते हैं-

प्रश्न-६. 'बृहदारण्यक-उपनिषद्' में '**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्त चैवामूर्तं च**' कहकर स्पष्ट ही इस तत्त्वात्मक (पञ्चतत्त्वात्मक) जगत् को 'परब्रह्म' का रूप बतलाया गया है। इसी प्रकार 'यजुर्वेद संहिता' के '**पुरुष एवेदं सर्वम्**' इत्यादि मन्त्र में भी 'पुरुष' के रूप में 'ब्रह्म' को ही 'भूत, भविष्यत्' और 'वर्तमानकलिक' जगत् बतलाया गया है। अत: ब्रह्म ही इस जगत् का अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है, यह स्पष्ट है।

उत्तर. सनातनियों के 'अधोवक्ता' ने ये जो दो प्रमाण प्रथम 'बृहदारण्यक-उपनिषद्' से और दूसरा 'यजुर्वेद' से प्रस्तुत करके जगत् को 'ब्रह्म' बताने का असफल प्रयास किया है, वह विवेकपूर्ण नहीं है, क्योंकि 'बृहदारण्यकोपनिषद्' के द्वितीय अध्याय के तृतीय 'ब्राह्मण' में ब्रह्म के 'मूर्त-अमूर्त', 'मर्त्य-अमृत' और 'स्थित' एवं 'यत्' तथा 'सत्' और 'व्यत्' रूपों की जो चर्चा की गयी है उसका तात्पर्य ऐसा नहीं है। उसका संक्षेप में यही मतलब है कि 'उपादान-कारण' रूप 'प्रकृति' को लेकर 'निमित्तकारण' रूप 'ब्रह्म' ने जो 'जगत्' उत्पन्न किया है, उसी को यहाँ 'ब्रह्म' शब्द से कहा गया है। इसका कारण यह है कि 'ब्रह्म' शब्द का मुख्यार्थ 'बड़ा' है। अत: यह जगत् भी बड़ा होने से यहाँ 'ब्रह्म' रूप में कहा गया है। यहाँ अनन्त कोटि-ब्रह्माण्डनायक 'परब्रह्म' सच्चिदानन्द का प्रकरण नहीं है। इसी जागतिक ब्रह्म के अग्रलिखित दो रूप है-''**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च। तदेवन्मूर्तं यद् अन्यद् वायोश्चान्तरिक्षात्। अथाऽमूर्तं वायुश्चान्तरिक्षम्**'' (द्र. बृहदा. अ. २ कण्डिका १-३)। अर्थात् उपादानकारण रूप प्रकृति को लेकर निमित्तकारण रूप परब्रह्म परमात्मा ने जो यह जगत् बनाया है, उस के 'मूर्त' और 'अमूर्त' भेद से दो रूप हैं। 'पृथिवी, जल' और 'अग्नि' इसके 'मूर्तरूप' हैं जो कि 'वायु' और 'आकाश' से भिन्न हैं। 'वायु' और 'आकाश' इस जागतिक-ब्रह्म के 'अमूर्त-रूप' हैं। यहाँ सोचने योग्य बात यह है कि 'ब्रह्म' के ये दोनों रूप 'पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश' रूप पञ्चभूत ही तो हैं। इन पाँचों भूतों में से प्रथम तीन भूतों अर्थात् 'पृथिवी, जल और अग्नि' को सावयव व हस्तग्राह्य और आँखों से देखने योग्य होने के कारण मूर्त-साकार के अंग 'वायु' और 'आकाश' को 'निरवयव' एवं 'नीरूप' होने के कारण 'मूर्त'=निराकार बतलाया गया है। जो कि प्रत्यक्ष-दृष्ट एवं युक्ति और प्रमाणों से सम्पुष्ट होने से ठीक ही हैं। इनका सच्चिदानन्द परब्रह्म से सम्बन्ध नहीं है। वैसे भी उपनिषद्-ग्रन्थ वेद न होकर 'वैदिक-ग्रन्थ' हैं। अत: वे 'स्वत:प्रमाण' न होकर 'परत:प्रमाण' अर्थात् वेदानुकूल होने पर ही प्रमाण माने गये हैं। अधोवक्ताओं की मनमानी 'वेद' में नहीं चल सकती है। वे उपनिषदों में तो खुलकर 'द्वैताद्वैत-विशिष्टाद्वैत' के रूप में रास रच ही चुके हैं। अत: यहाँ बुद्धिभेद उत्पन्न करने वाली उनकी यह कुचेष्टा सर्वथा ही निन्द्य है। जहाँ तक ''**पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि**'' (यजु. ३१/३) को इस प्रकरण में जोड़कर परब्रह्म को साकार बताने की बात है, वह भी ठीक नहीं है। यतो हि वहाँ भी 'कार्यरूप जगत्' का ही वर्णन है, परब्रह्म का नहीं।

अब हम '**पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्**' (यजु. ३१/२) इस मन्त्र पर विचार करते हैं। इस मन्त्र का भी वह अर्थ नहीं हैं जो कि सनातनी 'अधोवक्ता' ने ऊपर दिखलाया है। इसका वास्तविक अर्थ तो यह है कि ''जो

उत्पन्न हुआ अर्थात् उत्पन्न हो चुका है और जो उत्पन्न होने वाला एवं जो पृथिवी आदि के संसर्ग से अत्यन्त बढ़ता रहता है, उस प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप सम्पूर्ण जगत् को 'अविनाशी' और मोक्ष सुख का अधिष्ठाता,सतय गुण-कर्म-स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा ही रचता है'' यह है। यहाँ पर डॉ. कुसुमलता आर्या ने तीन पुरुषों अर्थात् प्रथम 'क्षरपुरुष'= 'प्रकृति' जो कि त्रिकालबद्धा, परिणामिनी और भोज्या है का, एवम् द्वितीय 'अक्षर-पुरुष'='जीवात्मा' जो कि 'दशाङ्गुलस्थ-अजर-अमर' 'भोक्ता' और प्रकृति पर आश्रित है का, तथा तृतीय 'अव्यय-पुरुष'='परब्रह्म परमात्मा' जो कि 'पुरुषोत्तम, नित्य' एवम् 'ईशानः'=स्वामी और 'द्रष्टा' है का, वर्णन स्वीकार किया है। आचार्य महीधर कृत इस मन्त्र का अधोलिखित वह भाष्य भी हमारे द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त अर्थ का ही समर्थन करता है-''**स एव पुरुषः पूर्वपर्याय विशेषित एव शब्दो नान्यः। इदं वर्तमानकं सर्वं यच्च भूतमतीतं यच्च भाव्यं भविष्यत् तस्य कालत्रयस्य ईशानः। न केवलं कालत्रयस्य ईशानः, उत अमृतत्वस्यापि मोक्षस्यापि। उत शब्दोऽपि शब्दार्थे। कस्मात्कारणात्? यदन्नेनामृतेन अतिरोहति=अतिरोधं करोति। सर्वस्येश्वर इति।**'' आचार्य महीधर के इस भाष्य का अभिप्राय यह है कि इस मन्त्र से पहले वाले 'सहस्त्रशीर्षा.' इत्यादि मन्त्र में वर्णित अनन्य परमात्मा ही इस सम्पूर्ण वर्तमान, भूत तथा 'भविष्यत्' रूप तीनों कालों का स्वामी है। वह केवल इन तीनों कालों का ही स्वामी नहीं है अपितु वह 'मोक्ष' का भी स्वामी है। इस महीधर-भाष्य में परमात्मा जगत् का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' है, इस अर्थ की गन्ध भी नहीं आती है। अतः ब्रह्म सृष्टि का 'निमित्तिकारण' है, जीव 'साधारणकारण' और प्रकृति 'उपादानकारण' है, यही मानना उचित है। यही वैदिक सिद्धान्त है।

प्रश्न ७. 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय' (ऋ. ६/४७/१८) इस ऋचा में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में संसार के समस्त रूपों को ब्रह्म के रूप बतलाया गया है। फिर भी उसे निराकार मानना उचित नहीं है।

उत्तर- यहाँ पर भी अधोवक्ता (सनातनी वकील) मन्त्र की गहराई में न जाकर ऊपर-ऊपर ही तैरता हुआ सा दिखाई दे रहा है। इस मन्त्र से उसके मनगढ़न्त-मत की पुष्टि नहीं होती है। मन्त्र का तात्पर्य यह है- यतः इस मन्त्र का देवता इन्द्र है जो कि परमात्मा का ही वाचक है। अतः यहाँ उसकी ही गुण-गरिमा का वर्णन किया गया है। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र में 'वाचकलुप्तोपमा-अलङ्कार' मानते हुए 'इन्द्र' को जीवात्मा मानकर अर्थ किया है। उनके भाष्य का भावार्थ यह है- ''जैसे विद्युत पदार्थ के प्रति तद्रूप होती है वैसे ही जीवात्मा भी शरीर के प्रति तत्स्वभाव वाला होता है और जब वह बाह्य विषय देखने की इच्छा करता है, तब उसको देख के तत्स्वरूप ज्ञान इस जीव को होता है और जो जीव के शरीर में बिजुली के सहित असंख्य नाड़ियाँ हैं उन नाड़ियों से वह सब शरीर के समाचार को जानता है। इस प्रकार देखते हैं तो प्रकृत मन्त्र में ब्रह्म के 'साकार' और 'निराकार' होने की कोई सूचना प्राप्त नहीं होती है। हाँ! सायणाचार्य का भाष्य उपर्युक्त धारणा में अवश्य ही सम्बल बनता है, जो कि एक तरह का कल्पनाप्रसूत मायाजाल ही है। उनके द्वारा बतलाया गया 'इन्द्र' और उसका 'शतादश हरयः' रथ एक सुघड़ कल्पना तो है वास्तविकता नहीं।

ऊपर भी लिखा जा चुका है और यहाँ फिर से स्पष्ट लिखा जा रहा है कि वेद के अनुसार संसार में दिखायी देने वाले सभी रूप 'प्रकृति' के हैं 'परमात्मा' के नहीं। कारण यह है कि प्रकृति ही नाना रूपों में विपरिणत= परिवर्तित होती रहती है ब्रह्म या परमात्मा नहीं। इसी हेतु से यजुर्वेद में कहा गया है-

अजा रे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला।
शश आस्कन्दमर्षति-अहिः पन्थां वि सर्पति।।

२३।५६।।

अर्थात् 'यह प्रकृति' ही है जो प्रलयकाल में सभी रूपों को निगल जाती है और जब यह संसारावस्थापन्न होती है, तब नाना कार्यों और उनके रूपों को प्रकट करती है। जो पुरुष चतुर और ज्ञानी होता है, वह इसके बन्धन से परे हो जाता है और जो मनुष्य सर्पवत्- कुटिल चाल चलता है, वह जन्म-मरण के मार्ग पर चलता हुआ विविध रीतियों से जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है। यह प्रकृति 'अनादि-सत्ता' है। ऐसा ही विचार महीधर आचार्य ने भी यहाँ प्रकट किया है। तद्यथा-''**अजा पिशङ्गिला-अजा नित्या माया, रात्रिवी पिशङ्गिला पिशं रूपं गिलति भक्षयति, पिशङ्गिला माया विश्वं ग्रसते। रात्रावपि रूपाणि न प्रतीयन्ते तमसा।**'' अतः परमात्मा निराकार ही है, यह स्पष्ट है। **शेष अगले अंक में...**

एटा (उ.प्र.)

मेरे बचपन के साथी पं. सत्यानन्द वेदवागीश

रामदेव आर्य, साहित्य-रत्न

पण्डित सत्यानन्द जी वेदवागीश का जन्म १० अक्टूबर १९३३ को अजमेर जिले के लीड़ी ग्राम में श्री ओंकारसिंह चौधरी के कृषक परिवार में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम में प्राप्त कर १९४३ में महर्षि दयानन्द मनोवाग्मित गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में प्रवेश प्राप्त किया।

गुरुकुल के आचार्य स्वामी व्रतानन्द जी के संरक्षण में निरन्तर १४ वर्ष तक पाणिनीय व्याकरण महाभाष्य, निरुक्त, छन्द, दर्शन, संस्कृत साहित्य वेदादिशास्त्रों का, आर्ष विद्या अध्ययन किया, 'वेदवागीश' उपाधि को प्राप्त किया। उस समय के प्रमुख गुरुजन पं. शोभित मिश्र, पं. शंकरदेव जी, पं. भीमसेन जी वेदवागीश, श्री कान्हसिंह जी कोटनी इत्यादि प्रमुख थे। गुरुकुल शिक्षा के पश्चात् एम.ए. आदि की राजकीय परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। पण्डित जी प्रारम्भ से ही कुशाग्र बुद्धि के थे।

पं. सत्यानन्द जी से मेरा सम्पर्क फरवरी १९४७ में जब मैं गुरुकुल में प्रविष्ट हुआ तब से निरन्तर अन्तिम समय तक बना रहा। अगस्त १९५४ में मैंने गुरुकुल छोड़ दिया। उसके पश्चात् मैं चित्तौड़ में ही निवास करता था और गुरुकुल में आना-जाना बना रहता था। पण्डित जी अध्ययनकाल में अपना पूरा समय अध्ययन, योगाभ्यास इत्यादि में लगाया करते थे। गुरुकुल में छात्रों को कार्य वितरण होता था। उसमें आप रोगियों की सेवा का कार्य लिया करते और रोगियों की सेवा मनोयोग से करते थे। मैं भी अनेक बार बीमार हुआ, पं. जी ने मेरी सेवा की। मैं पं. जी का जीवनभर आभारी रहा। हम दोनों का बचपन साथ-साथ बीता और अन्तिम समय तक येन केन प्रकारेण बना रहा। वह हमेशा मुझे छोटे भाई का ही स्नेह देते थे। पं. जी का अधिक समय तक निवास चित्तौड़, अजमेर, पुष्कर, जोधपुर, अलवर, नोएड़ा-दिल्ली रहा। पं. जी के घर में कोई शुभ कार्य होता तो मुझे आमन्त्रित करना नहीं भूलते थे। मेरे यहाँ भी हर कार्य में उन्हें प्रमुखता से आमन्त्रित किया जाता था। वह मेरे परिवार के प्रत्येक सदस्य को नाम से जानते थे। पत्रव्यवहार एवं दूरभाष पर नाम से सबके समाचार पूछा करते थे। जब ऋषि मेले में यज्ञ के ब्रह्मा बनकर आते मैं उनसे अवश्य मिलता था। वह मेरे घर अनेक बार निवास कर मुझे उपकृत करते थे।

हम दोनों का अचानक कहीं मिलना होता तो उनके साथ खड़े लोगों को मेरा परिचय देते, ''ये मेरे बचपन के साथी हैं।'' पं. जी जब पुष्कर थे, मैंने अपनी बड़ी बेटी का अन्नप्राशन संस्कार उनके घर ही कराया। मैं उन्हें दक्षिणा देने लगा तो लेने से मना कर दिया, मैंने निवेदन किया कि बिना दक्षिणा के संस्कार सफल नहीं होता, तब उन्होंने कहा कि मैं आपसे दक्षिणा छोड़ूँगा नहीं और लूँगा भी नहीं, तब उन्होंने एक रुपया रख लिया।

पं. जी के जीवन की कुछ बातें हम दोनों की समान हैं। पं. जी का विवाह अलवर में सुमित्रा जी से हुआ। विवाह संस्कार आचार्य मेधाव्रत जी (दयानन्द दिग्विजयकार) ने सम्पन्न कराया था। उसमें मैं भी बाराती था।

पं. जी का बड़ा पुत्र श्रुतिधर एवं मेरी बड़ी पुत्री मञ्जुला का जन्म पुष्कर के एक ही हास्पिटल में एक ही दिन हुआ। मेरा विवाह संस्कार भी आचार्य मेधाव्रत जी ने सम्पन्न कराया था। हम हमेशा जीवन के हर मोड़ पर सुख-दुःख में सहभागी रहे। सुमित्रा जी को किसी ने बताया कि मैं परेशानी में हूँ, वे तुरन्त मुझसे मिलने आयीं और अपना फोन नं. मुझे देकर गईं। कुछ समय से हम परिवारजन उस नम्बर पर फोन लगाते रहे, नम्बर लगता ही नहीं था। हम नम्बरों के पता लगाने के प्रयास करते रहे, इस अवधि में यह घटना हो गई।

जब भी गुरुकुल जाता मैं स्वामी व्रतानन्द जी को कहा करता था, आचार्य जी चित्तौड़ गुरुकुल की अब तक की कोई उपलब्धि है तो वह पं. सत्यानन्द जी हैं, तब वे कहते भीमसेन जी भी तो हैं। मैं उनसे निवेदन करता पं. भीमसेन जी हैं, उनसे समाज को इतना लाभ नहीं है। विद्वत्ता उन तक ही सीमित है। पं. सत्यानन्द जी समाज में धर्म-प्रचार, वेदोपदेश, शंकराचार्य इत्यादि से शास्त्रार्थ कर समाज को लाभान्वित कर, आर्यसमाज, आर्ष पाठविधि इत्यादि का

प्रचार-प्रसार करते हैं। अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, अन्त्येष्टि संस्कार, पाणिनीय शब्दानुशासनम्, नामनिधि, वेदभाष्य, बुद्धि-निधि, दयानन्द दृष्टान्त निधि, सूक्ति निधि, भक्ति सत्संग कीर्तन, वेद सहायनिधि, भावार्थ प्रकाश (दो खण्ड) इत्यादि अनेक ग्रन्थ समाज को प्रदान किये। यदि कोई सज्जन प्रकाशन में आर्थिक सहयोग करता तो और अनेक अमूल्य ग्रन्थ समाज को प्रदान करने में सक्षम थे।

यह पुष्कर में संस्कृत के व्याख्याता थे। वह राजकीय सेवा में लोक सेवा आयोग से चयनित थे। उन्होंने उस सेवा को छोड़ दिया। यदि वह उस पद पर बने रहते तो वे प्रधानाचार्य के पद से सेवानिवृत्त होते। पं. जी अपने सिद्धान्त के पक्के थे। जहाँ उनके विचार नहीं मिलते, उस स्थान को तुरन्त छोड़ देते थे। वे कभी लक्ष्मी के पीछे नहीं भागे, वे जीवनभर सरस्वती के उपासक रहे। वे स्वभाव से दयालु थे, जिज्ञासु छात्रों को आर्ष पाठविधि से अष्टाध्यायी महाभाष्य इत्यादि का नि:शुल्क अध्यापन कराया करते थे। जो आर्थिक स्थिति से कमजोर होते उन्हें अपने प्रभाव से परिचितों से आर्थिक सहयोग भी कराया करते थे। उनमें अभिमान नाममात्र का भी नहीं था। वे सादा जीवन उच्च विचारों के पृष्ठपोषक थे। गुणों की खान थे। हमारा इतने वर्षों का साथ, भूली-बिसरी बातें यहाँ लिखना सम्भव नहीं है।

मैं अपने आप को सौभाग्यशाली मानता हूँ कि इतना बड़ा वेदों के प्रकाण्ड पण्डित, आर्ष पाठविधि के प्रचारक, महर्षि दयानन्द, आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचारक, दु:ख सुख के साथी, मार्गदर्शक का साथ मिला, यही मेरे जीवन की उपलब्धि है। पण्डित जी के साथ कुछ लोगों ने अच्छा व्यवहार नहीं किया, जिसके कारण उन्हें आर्थिक संकट में फँसा दिया। जिसके कारण उन्हें अपने मकान बेचने पड़े। पण्डित जी का २३ दिसम्बर का स्वर्गवास, स्वामी श्रद्धानन्द जी का २३ दिसम्बर का बलिदान दिवस आर्यसमाज की महत्त्वपूर्ण तारीखों में याद किया जावेगा।

२३ दिसम्बर २०१९ को पं. सत्यानन्द जी के निधन की इस दु:खद घड़ी में श्री राजेश जी आर्य एवं आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के आदरणीय मन्त्री श्री देवेन्द्र शास्त्री ने जिस तत्परता से इस कार्य में सहयोग कर सम्मानपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न कराया इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

२६ व २७ फरवरी २०२०	–	परोपकारिणी सभा का स्थापना दिवस
१७ से २४ मई २०२०	–	आर्यवीर दल शिविर
३१ मई से ०७ जून २०२०	–	आर्यवीरांगना दल शिविर
१४ से २१ जून २०२०	–	योग साधना स्वाध्याय शिविर
०४ से ११ अक्टूबर २०२०	–	योग साधना स्वाध्याय शिविर
०६ अक्टूबर २०२०	–	डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला
२० से २२ नवम्बर २०२०	–	ऋषि मेला (१३७वाँ बलिदान समारोह)

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

विश्व पुस्तक मेला-२०२०
सत्यार्थप्रकाश वितरण

भारत की राजधानी दिल्ली में प्रतिवर्ष विश्व पुस्तक मेले का आयोजन किया जाता है। इस भव्य पुस्तक मेले में पूरे विश्व से अलग-अलग प्रकाशनों द्वारा प्रकाशित पुस्तकें हमें देखने को मिलती हैं। कई नई पुस्तकें इस मेले में प्रकाशित की जाती हैं। लेखकों एवं प्रकाशनों के लिए अपनी कहानी, मान्यता, खोज, विचारधारा को लोगों तक पहुँचाने का यह मेला बहुत ही अच्छा माध्यम है। इसी वजह से परोपकारिणी सभा भी ऋषिकृत ग्रन्थों की और विद्वानों के विचारों को जनसामान्य तक पहुँचाने हेतु प्रतिवर्ष इस मेले का हिस्सा बनती है। नि:शुल्क सत्यार्थप्रकाश वितरण का कार्य भी इस सभा द्वारा किया जाता है।

इस भव्य पुस्तक मेले का अनुभव लेने हम सभी गुरुकुल के छात्रों को दिल्ली ले जाया गया। वहाँ आर्यसमाज जनकपुरी, (सी-ब्लॉक) पंखा रोड में हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई। आर्यसमाज ने बहुत ही अच्छी व्यवस्था की और किसी भी चीज की कमी महसूस नहीं होने दी। हमारे प्रातराश व शाम के भोजन की व्यवस्था आर्यसमाज ने की। दिल्ली पहुँचते ही हम हमारा सामान आर्यसमाज में रख पुस्तक मेले की ओर रवाना हो गए। यहाँ पहुँचते ही चारों ओर किताबें ही किताबें दिखाई पड़ रही थीं। लोगों का आना-जाना शुरु था और लोग अपने पुस्तकों का प्रचार जोरों-शोरों से कर रहे थे। हॉल में थोड़ा आगे चलने पर परोपकारिणी सभा का स्टॉल था और हमने देखा कि सभा के कर्मचारी नि:शुल्क सत्यार्थप्रकाश का वितरण कर रहे थे। वहाँ जाकर वितरण में सहयोग देने के लिये पूछा गया। हम सभी तैयार हुये और भ्राता प्रभाकर जी ने हमें लोगों को कैसे समझाना व क्या समझाना इसकी थोड़ी जानकारी दी। फिर हम सत्यार्थप्रकाश के वितरण हेतु निकल पड़े। वितरण करते वक्त कइयों को संकोच महसूस हुआ और जब लोग पुस्तक लेने से मना कर देते थे तो कइयों को निराशा भी होती थी। फिर भ्राता जी ने हमें समझाया कि इतनी छोटी-छोटी बातों से अगर हम निराश होते हैं तो गुरुकुल में दी जाने वाली शिक्षा व्यर्थ है और जब पुस्तक वितरण जैसा आसान काम हम नहीं कर सकते तो वेद की ज्योति जलाना, ओ३म् का ध्वज ऊँचा रखना, गोमाता का पालन तो केवल कल्पना मात्र है। विद्यार्थियों का जोश बढ़ा और हमने पूरे उत्साह से सत्यार्थप्रकाश के वितरण का कार्य प्रतियाँ समाप्त होने तक किया। इस बीच हमें कुछ ऐसे लोग मिले जिन्होंने नि:शुल्क सत्यार्थप्रकाश लेने से इन्कार कर दिया और पूरे पैसे देकर पुस्तक खरीदी। कुछ ऐसे लोग मिले जिन्होंने सत्यार्थप्रकाश का कभी नाम तक नहीं सुना था। यहाँ हमें सत्यार्थप्रकाश में क्या है, इस पुस्तक का आज क्या महत्त्व है, इस पुस्तक से आपको क्या लाभ होगा जैसे विषयों को उनके सामने स्पष्ट करना पड़ता था। फिर कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते थे जो सत्यार्थ प्रकाश का विरोध करते थे, यहाँ हमें उनकी शंकाओं का समाधान करना पड़ता था और अगर उनके प्रश्नों का उत्तर हमारे पास न हो तो हम उनकी बात प्रभाकर जी से करा देते थे। पुस्तक वितरण के वक्त कुछ ब्रह्मचारी अवकाश पाकर पुस्तकें देख लेते थे और प्रभाकर जी ने पुस्तक वितरण होने के बाद वे पुस्तकें हमें दिला भी दीं। इस मेले में हम सभी विद्यार्थियों ने एक बात अनुभव की कि अगर ज्ञान कम हो तो कोई भी किया कार्य सम्पन्न होने पर भी अधूरा-सा लगता है। लगता है कि इससे और बेहतर हो सकता था। तो हमने सोच लिया है कि हम आर्ष ग्रन्थों का और गहराई से अध्ययन करेंगे और अगली बार सत्यार्थप्रकाश के वितरण का कार्य और अधिक कुशलता से करेंगे।

पढ़ाने में लाड़न नहीं करना योग्य है!

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते हैं, परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें।

(स. प्र. स. २)

गुरुकुल की ओर से

गुरुकुल ऋषि उद्यान का दिल्ली शैक्षणिक भ्रमण

ब्रह्मचारी मोहित

पुस्तक मेले में सत्यार्थप्रकाश के वितरण के पश्चात् गुरुकुल के लिए सभा द्वारा एक बस की व्यवस्था की गयी जो हमें पूरे दिन में दिल्ली के लोकप्रिय स्थलों का दर्शन कराने वाली थी, परन्तु उस दिन सुबह अकस्मात् वर्षा होने के कारण भ्रमण का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा। दोपहर के बाद मौसम में सुधार होने पर उस दिन हमें इण्डिया गेट का भ्रमण कराया गया। पास में ही राष्ट्रीय युद्ध स्मारक स्थित है। हम वहाँ पर भी गये। इस स्मारक का निर्माण हमारे देश के लिए बलिदान हुए सैनिकों की स्मृति में किया गया है। जिसका उद्घाटन २५/०२/२०१९ को हमारे देश के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने किया था। यहाँ पर देश के लिए बलिदान हुए प्रत्येक जवान का नाम पत्थरों पर सुनहरे अक्षरों में अंकित किया गया है। इन बलिदान हुए जवानों में से किसी एक को प्रतिदिन शाम के समय उनके परिजनों की उपस्थित में श्रद्धाञ्जलि दी जाती है। इस स्मारक पर जाकर देश पर बलिदान हो जाने वाले सैनिकों को देख सेना के प्रति हमारा सम्मान और अधिक बढ़ गया तथा निःस्वार्थ भाव से देश के लिए कुछ करने की प्रेरणा भी मिली। तत्पश्चात् इण्डिया गेट के पास में ही स्थित राष्ट्रपति भवन और संसद भवन को भी हमने देखा। फिर अगले दिन प्रतिदिन की तरह संध्या और यज्ञ करने के पश्चात् प्रातराश कर हम पुनः भ्रमण के लिए निकल पड़े। सबसे पहले हम लोटस टेम्पल देखने के लिए गये। यहाँ जाने के बाद अवतारी पुरुषों की हमारी सूची में एक और नाम जुड़ गया। इनका नाम मिर्जा हुसैन अली था जो बाद में बाहउल्लाह के नाम से जाने गये। इनका जन्म सन् १८१७ में पारस देश (वर्तमान में ईरान) में हुआ था। इन्होंने एक और नये धर्म बहाई धर्म की स्थापना की। यह लोटस टेम्पल भारत में इस धर्म के प्रचार का सबसे मुख्य केन्द्र है। इसके बाद हम कुतुबमीनार देखने पहुँचे। कुतुबमीनार की ऊँचाई को देखकर उस समय के भवन-निर्माताओं के भवन-निर्माण सम्बन्धी उत्कृष्ट ज्ञान का पता चलता है। कुतुबमीनार परिसर का अवलोकन करते समय भ्राता प्रभाकर जी ने परिसर की दीवारों, खम्भों आदि पर बनी हुई हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों, संस्कृत में लिखे शब्दों और अन्य चिह्नों की तरफ हमारा ध्यान केन्द्रित कराया तथा हमें बताया कि किस तरह मुगल आक्रान्ताओं ने भारत में स्थित ऐसी ही अनेकों ऐतिहासिक इमारतों और स्थलों में फेरबदल करके उन्हें अपना नाम दे दिया तथा स्वयं को उसका निर्माता भी घोषित कर दिया। अर्थात् कुतुबमीनार और उससे जुड़े पूरे परिसर का निर्माण भारतीय राजाओं-महाराजाओं द्वारा ही कराया गया था। कुतुबमीनार परिसर में 'कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद' स्थित है। इस मस्जिद के परिसर में प्रवेश करते समय इसके मुख्य द्वार पर इसके बारे में एक शिलालेख लगा हुआ है जिस पर स्पष्ट शब्दों में यह लिखा हुआ है ''कुव्वतुल-इस्लाम (इस्लाम की शक्ति) मस्जिद के नाम से प्रसिद्ध यह इमारत भारत में स्थित प्राचीनतम मस्जिद है। इसके मध्य स्थित आयताकार (४३.२ मी. × ३२.९ मी.) सहन के चारों ओर दलान बने हैं। जिनमें प्रयुक्त खम्भे तथा दूसरी वास्तु सामग्री मूलतः सत्ताईस हिन्दू एवं जैन मन्दिरों को धवस्त कर प्राप्त की गई थी। इस मस्जिद का निर्माण गुलाम वंशी सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने ११९३ ई. सन् से ११९७ ई. सन् के बीच करवाया।''

कुतुबमीनार के बाद हमने लालकिला देखा। यहाँ का परिसर भी अद्भुत है। केवल चित्र के रूप में देखी इन इमारतों को प्रत्यक्ष देखना अपने आप में अनोखा अनुभव था।

दिल्ली में स्थित विशेष स्थानों का भ्रमण करने के पश्चात् हम सभी को दिल्ली में आकर क्या सीखने को मिला व क्या नई चीज जानने को मिली-यह भ्राता जी ने पूछा। यहाँ छात्रों ने अपने-अपने अनुभव सुनाये। किसी ने बताया कि दिल्ली के लोगों में अनुशासन बहुत है। किसी ने कहा कि लोगों ने बताया कि उन्हें पुस्तक मेले में नई-नई किताबें देखने को मिलीं और किसी ने तो दिल्ली ही पहली बार देखी थी। हम सभी विद्यार्थियों ने मेट्रो ट्रेन में यात्रा भी प्रथम बार की। यह हमारा अनुभव भी अत्यन्त रोमांचक रहा। इस तरह प्रत्येक विद्यार्थी कुछ न कुछ अनुभव लेकर गुरुकुल लौटा और सभी के लिए प्रवास अत्यन्त ज्ञानवर्धक था। हम सभी अगली बार फिर से विश्व पुस्तक मेले का हिस्सा बनने के लिये उत्सुक हैं।

आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान, अजमेर।

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१ से १५ जनवरी २०२० तक)

१. श्री रामजीवन मिश्रा व श्रीमती द्रौपदी मिश्रा, जयपुर २. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु ३. श्री रमनलाल आर्य, बुरहानपुर ४. श्री ओमप्रकाश देवेश्वर, नई दिल्ली ५. श्री दिवाकर अग्रवाल, दिल्ली।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१ से १५ जनवरी २०२० तक)

१. श्री नरेश दत्त आर्य, बिजनौर २. श्री सुनील कुमार, बिजनौर ३. श्री जगदीश शर्मा, बिजनौर ४ श्री वरुण कुमार, बिजनौर ५. श्री सुन्दर गोयल, बिजनौर ६. श्री गुरमीत सिंह, मेरठ ७. श्री इन्द्रजीत् सिंह, मेरठ ८. श्री अरुण आर्य, गाजियाबाद ९. श्री राजकिरण सिंह, गाजियाबाद १०. श्री सेतुरमन, गाजियाबाद ११. श्री राजीव पुरी, गाजियाबाद १२. श्री ज्ञानप्रकाश जिन्दल, गाजियाबाद १३. डॉ. सुरेन्द्र सिंह, गाजियाबाद १४. श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा, गाजियाबाद १५. श्री सत्येन्द्र शर्मा, गाजियाबाद १६. सुश्री महिमा शर्मा, गाजियाबाद १७. डॉ. संजना शर्मा, अजमेर १८. श्रीमती प्रेमवती शर्मा, बीकानेर १९. श्री दयाराम आर्य, अलवर २०. डॉ. मोतीलाल शर्मा, जयपुर २१. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु २२. श्री हरसहाय सिंह आर्य (गंगवार) बरेली २३. श्री के.पी. सिंह, नई दिल्ली २४. श्री अभय राणा, नई दिल्ली २५. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ

पृष्ठ : २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा

पृष्ठ : ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर

पृष्ठ : ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग

पृष्ठ : २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बहार का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी

पृष्ठ : १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-संपादक**

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ६ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	५१०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,००,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

शोक - समाचार

परोपकारिणी सभा के कोषाध्यक्ष श्री सुभाष नवाल की ज्येष्ठ पुत्रवधू श्रीमती श्रुति नवाल धर्मपत्नि श्री सुशील नवाल का ३४ वर्ष की अल्पायु में कैंसर रोग के कारण दिनांक १३ जनवरी २०२० को जयपुर चिकित्सालय में निधन हो गया। स्वभाव से सरल व लोकहित के स्वभाव से उन्होंने अपने रोग के कष्टों को अनुभव कर आर्थिक रूप से असमर्थ कैंसर पीड़ितों के लिये एक ट्रस्ट भी बनाया था। अपने जीवनकाल में स्वयं रजिस्ट्रार कार्यालय जाकर उसका पंजीकरण भी कराया। ऐसी सुशीला, गुणी पुत्रवधू को खोकर नवाल परिवार अत्यधिक शोक संतप्त है। उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से किया गया। दिनांक १६ जनवरी को ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में सभी परिजनों, सम्बन्धियों व सभा के अधिकारी, सदस्यों ने उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। परोपकारिणी सभा इस दु:खद समय में नवाल परिवार के साथ है।

विस्मित हूं - - - -

डॉ. रामवीर

विस्मित हूं जिज्ञासु जी का
जब से पढा है लेख,
मुझ जैसे में भी इतने गुण
कैसे लिए हैं देख ।

या तो कोई भ्रान्ति हुई है
या है प्रेम-अतिरेक,
दो के सिवा तीसरा कारण
मैं नहीं पाता देख।

प्रेम उदात्त भाव है लेकिन
कमी है इस में एक,
प्रेमी निर्गुण प्रेमपात्र में
भी लेता गुण देख।

अच्छे बुरे का यूं तो सब को
ही होता है विवेक,
किन्तु कदाचित् प्रेम के कारण
बद भी लगता नेक।

प्रेमाविष्ट प्रेमी को प्राय:
होता जो आभास,
वह 'अतस्मिंस्तद्बुद्धि:' वाला
वेदान्ती 'अध्यास'।

हीनोपमा न कहें तो कह दूं
बात किसी की बताई,
लैला वैसी नहीं थी जैसी
कैस को दी दिखाई।

भोले और भले लोगों की
यह भी है पहचान,
वे अन्यों को अपने जैसा
ही लेते हैं मान।

धन्यवाद जो कहा आप ने
मुझे योग्य गुणवान्,
अपनी तो मैं नहीं जानता
आप गुणों की खान।

आप की गुणग्राहकता ही है
मुझ में कुछ न विशेष,
कभी कभी कविता के बहाने
होता भावोन्मेष।

कहते हैं द्रष्टा की दृष्टि
में होती सुन्दरता,
इस कारण ही भा गई होगी
आप को मेरी कविता।

'विद्वांसो वसुधातले परवच: -
श्लाघासु वाचंयमा:'
उक्ति का कर दिया आप ने
पूरी तरह खात्मा।

कथन आप का बढा गया है
मेरी जिम्मेदारी,
जैसा आप ने माना वैसा
होना हुआ जरूरी।

यही प्रार्थना है प्रभु से वे
करें अनुग्रह ऐसा,
जैसा आप ने मुझ को समझा
हो जाऊं मैं वैसा।

८६, सैक्टर ४६ , फरीदाबाद
(हरियाणा) - १२१०१०
चल. 9911268186